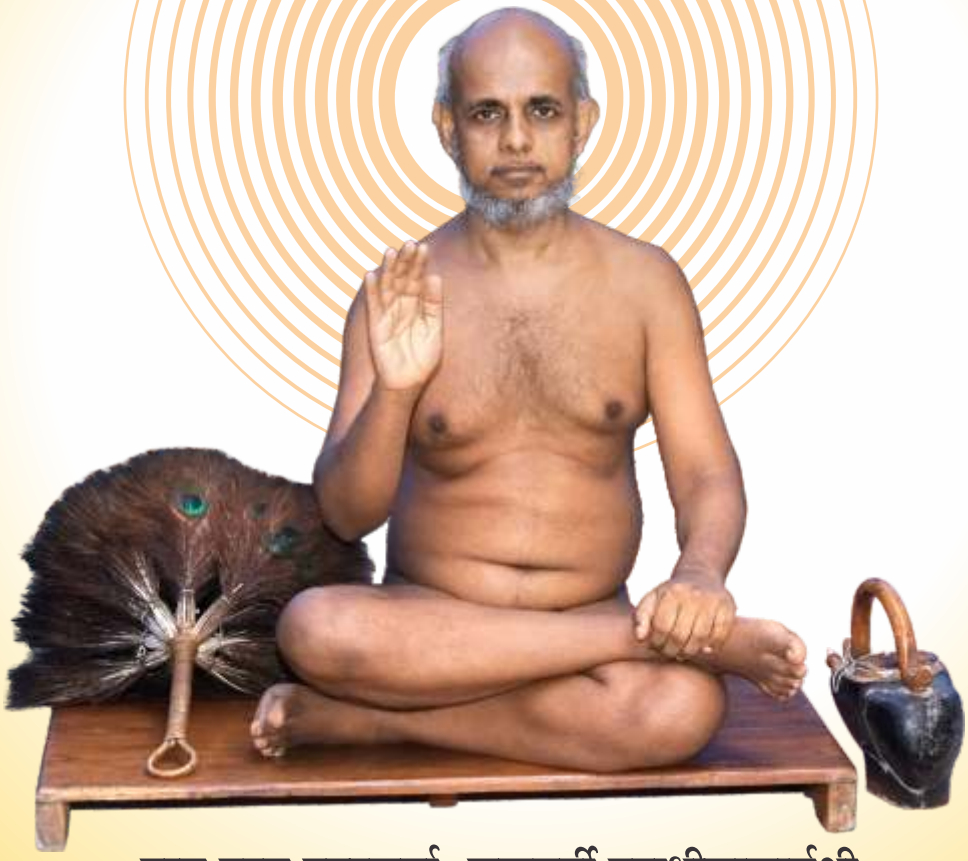

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती पट्टाधीशाचार्यश्री

सुविधिसागर जी महाराज

के

50 वें जन्मदिवस के पावन अवसर पर

सुविधि–परिवार के द्वारा आयोजित

जिनवाणी-महोत्सव

सहस्रग्रन्थसंग्रह

* जन्मदिवस 19–03–1971 * मुनिदीक्षा–11–05–1989 * आचार्यपद– 20–06–2004

पट्टाधीशपद– 24–12–2010 (20–06–2004 को की गई उद्घोषणा के अनुसार)

परम पूज्य आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज के द्वारा की गई उद्घोषणा:–

हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संघ के संचालकपद पर नियुक्त करते हैं।

(अंकलीकर वाणी–जुलाई 2004) (अक्षयज्योति–अक्तूबर 2004)

कर्मविपाक

ग्रन्थकर्त्ता
परम पूज्य आचार्यश्री सकलकीर्त्ति जी महाराज

सम्पादक–अनुवादक
ब्रह्मचारी विनोद जी शास्त्री
ब्रह्मचारी अनिल जी शास्त्री

प्रकाशक
श्री निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला समिति
टूण्डला–फिरोजाबाद (उत्तरप्रदेश)

(परम्परानायक)

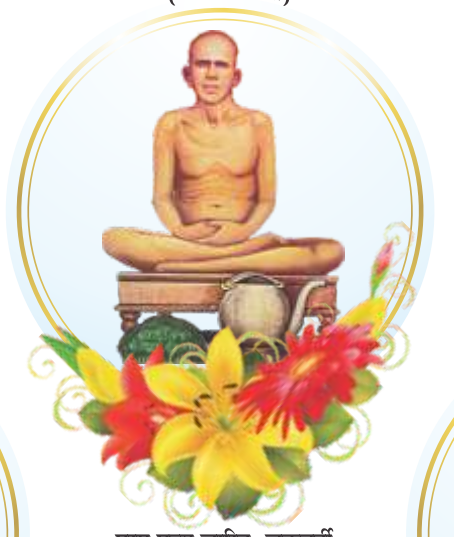

परम पूज्य चारित्र–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज
(अंकलीकर)

(द्वितीय पट्टाधीश)

परम पूज्य तीर्थभक्त–शिरोमणि,
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज

(तृतीय पट्टाधीश)

परम पूज्य सिद्धान्त–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज

(चतुर्थ पट्टाधीश)

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

दिगम्बर साधु निरन्तर पगविहार करते रहते हैं। ग्रन्थभण्डार को साथ में रख कर विहार करना अशक्यप्रायः होता है। फलतः उनको ग्रन्थों के सन्दर्भ देखने में असुविधा होती है। उनकी सुविधा के लिये इस कोश का निर्माण किया गया है। इस कोश के निर्माण में किसी भी प्रकार का व्यापारिक हेतु नहीं है।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न श्रावकबन्धुओं से निवेदन है कि वे ग्रन्थ का विक्रय कर अध्ययन करने की परम्परा को कायम रखें।

मुखपृष्ठ पर हमने ग्रन्थकर्त्ता, अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक आदि के नाम दिये हैं। किसी संस्थान का कर्तृत्व हमने लुप्त नहीं किया है।

इस कोश के लिये आवश्यक ग्रन्थ हमें अनेक स्रोतों से प्राप्त हुये हैं। हम उन सभी का आभार मानते हैं।

सुविधि–परिवार

कर्म विपाक

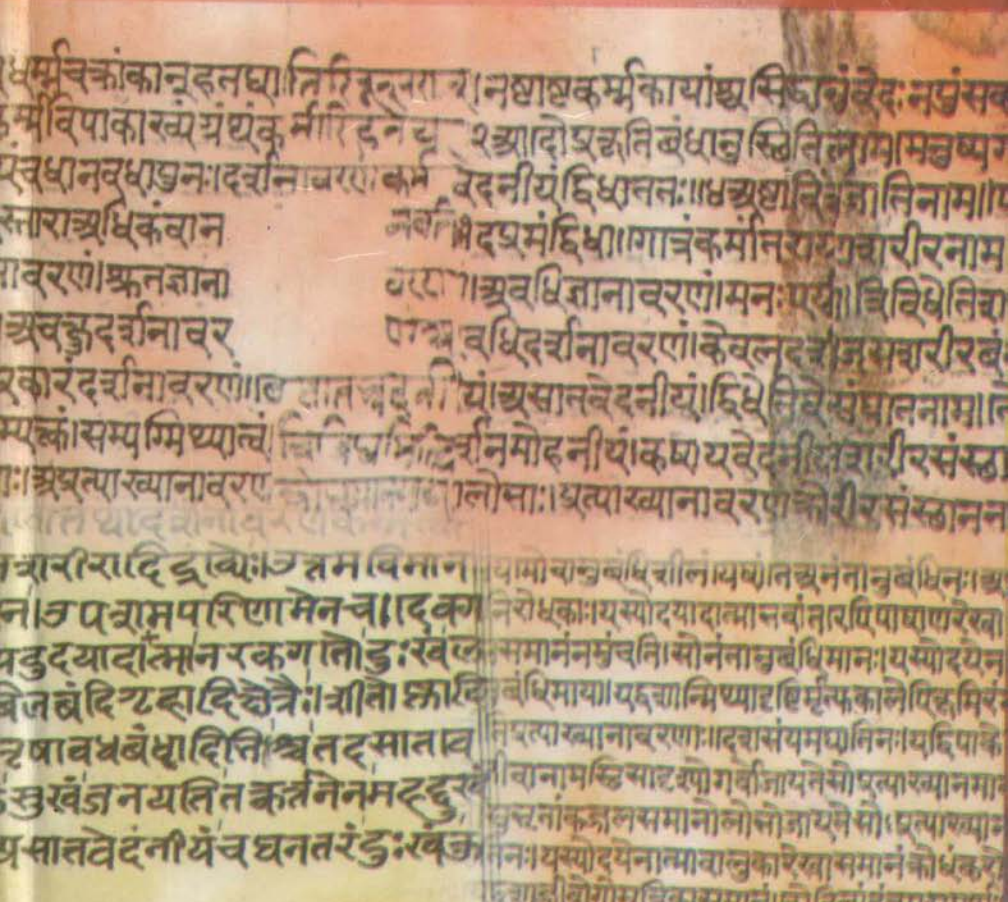

ग्रंथ प्रणेता:

आचार्य सकलकीर्ति

मूल संपादक -- अनुवादक ब्र. विनोद जैन, ब्र. अनिल जैन

आचार्य श्री सकलकीर्ति विरचित

कर्म-विपाक

मूल संपादक-अनुवादक

ब्र. विनोद जैन "शास्त्री" ब्र. अनिल जैन "शास्त्री"

श्री दिग. जैन अतिशय क्षेत्र पपौरा जी

जिला- टीकमगढ़ (म.प्र.)

प्रस्तुतिः

निर्ग्रन्थ ग्रंथमाला

कृति	-	**कर्म-विपाक**
ग्रंथ प्रणेता	-	आचार्य सकलकीर्ति
आशीर्वाद	-	प.पू. उपा. श्री निर्णय सागर जी महाराज
मूलसंपादक एवं अनुवादक	-	ब्र. विनोद जैन 'पपौरा जी' ब्र. अनिल जैन 'पपौरा जी'
मूल्य	-	30/-
प्रथम संस्करण	-	1000 प्रतियाँ दीपमालिका, सन् 2004

प्राप्ति स्थल

१. **ब्र. विनोद जैन**
श्री दिग. जैन अतिशय क्षेत्र पपौरा जी, टीकमगढ़ (म.प्र.)
पिन-472001 फोनः 07683-244378

२. **चन्द्रा कॉपी हाउस प्रा. लि.**
हॉस्पीटल रोड, आगरा-282 003
फोनः 0562-2360195

३. **श्री निर्ग्रन्थ ग्रंथमाला समिति**
श्री 1008 ऋषभदेव दि. जैन मन्दिर, ऋषभपुरी
टूण्डला चौराहा, टूण्डला जिला फिरोजाबाद (उ.प्र.)

मुद्रकः
चन्द्रा कॉपी हाउस
हॉस्पीटल रोड, आगरा-282003
फोनः 2360195, 9412260879

सम्पादकीय

1997 में "प्रकृति परिचय" और "सिद्धांतसार" नामक ग्रन्थों के प्रकाशन के कार्य से मेरा दिल्ली जाना हुआ था। उसी समय नया मंदिर धर्मपुरा दिल्ली के दर्शनार्थ भी गया था। सुयोग से वहां के हस्त लिखित ग्रन्थ भण्डार की सूची भी देखने को मिल गई। उसी भण्डार में कर्म विपाक– आचार्य सकलकीर्ति विरचित देखने को मिला था। बहु प्रयास के फलस्वरूप इस ग्रन्थ की छायाप्रति भी मिल गई। मै इस हस्तलिखित प्रति को अपने पास रखे रहा, पाण्डु लिपि की लिपि को पढ़ना कठिन सा प्रतीत हुआ तथा ग्रन्थगत अशुद्धियों के कारण इस पर कार्य करना संभव नहीं हो सका। कुछ भण्डारों में खोज के पश्चात् यह ग्रन्थ नहीं मिला। इसी बीच 2002 में डॉ. कमलचन्द्र सोगाणी, अपभ्रंश भारती जयपुर से दूरभाष पर वार्ता हुई– और उन्होंने कर्म विपाक ग्रन्थ आमेर के ग्रन्थ भण्डार में उपलब्ध होने की बात कही, आपने उस ग्रन्थ की एक छायाप्रति भी भेज दी। इन दोनों ग्रन्थों के आधार पर हमने ब्र. अनिल जी के साथ कार्य प्रारंभ किया। किन्तु निर्दोष संपादन होने की संभावना नहीं दिखाई दी, क्योंकि दोनों ही प्रतियों में पर्याप्त अशुद्धियाँ थीं। ग्रन्थ सामान्यतः अपनी हस्तलिपि में लिख लिया। इसी बीच ब्र. अनिल जी का महाराष्ट्र जाना हुआ– वहाँ नातेपुते (महाराष्ट्र) से इस ग्रन्थ की तीसरी प्रति मिल गई। इन तीनों प्रतियों के आधार पर इस ग्रन्थ का कार्य किया और फलस्वरूप कार्य पूर्ण हो गया। पहले हमारा भाव विना अनुवाद के प्रकाशन का था किन्तु गुरुवर आचार्य विद्यासागर जी से इस विषय में वार्ता हुई तो आपने कहा कि संभव हो तो अनुवाद सहित ही प्रकाशन करो। गुरुजी का आशीष प्राप्त कर, अनुवाद का कार्य हम लोगों ने प्रारंभ कर दिया। शीघ्र ही कार्य पूर्ण हो गया। **यह ग्रन्थ अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है। प्रथम बार ही अनुवाद सहित इसका प्रकाशन हो रहा है।**

ग्रन्थ का प्रतिपाद्य– कर्म विपाक नामक यह ग्रन्थ लघुकाय होते हुये भी महत् विषय का प्रतिपादन करता है। इस ग्रन्थ में ग्रन्थकार ने कर्म प्रकृतियों के भेद निरूपण कर, उनके नाम दिये हैं, पश्चात् प्रत्येक भेद की परिभाषा दी है, कर्म प्रकृतियों के विवेचन के पश्चात् कर्मों की उत्कृष्ट–जघन्य स्थिति, अनुभागबन्ध और प्रदेश बंध के रूप में कर्मों के आस्रव के कारण तथा कर्मक्षय प्रक्रिया निरुपण की है। अंत में सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार कर ग्रन्थकार ने ग्रन्थ को पूर्ण किया है।

ग्रन्थ की विशेषताएँ– कर्मकाण्ड को छोड़कर, यह प्रथम ग्रन्थ है, जिस में संक्षेप से चतुर्विध प्रकृति, स्थिति, अनुभाग एवं प्रदेश बंध का निरूपण पाया जाता है।

ग्रन्थ के विचारणीय बिन्दु –

- अनंतानुबंधी कषाय को सम्यक्त्व एवं देश संयम का घातक कहा है, अन्यत्र अनंतानुबंधी कषाय को सम्यक्त्व को घात करने वाली मात्र कहा गया है। यह विषय विशेष रूप से अन्वेषणीय है।
- ग्रन्थ में प्रकृति–बंध प्रकरण में कर्मबंध–अबंध का निरुपण है, अंत में कर्म क्षपणा विधि संक्षेप से प्ररूपित है। प्रकृतिबंध में कर्म बंध व्युच्छित्ति का कथन क्यों नहीं किया? आचार्य महाराज ने उदय अनुदय व्युच्छित्ति तथा सत्त्व त्रिभंगी को भी नहीं कहा है?
- प्रदेश बंध के प्रकरण में ज्ञानावरणादि कर्मों के आस्रव के कारणों का निरूपण किया गया है। कर्म आस्रव के कारणों का प्रदेश बंध के अंतर्गत क्यों ग्रहण किया? अन्यत्र तो बंध प्रत्यय प्रकरण में इनको सम्मिलित किया गया है।
- ग्रन्थकार ने अयोगकेवली गुणस्थान के द्विचरम काल में असाता वेदनीय की सत्त्व व्युच्छित्ति की है तथा चरम समय में साता वेदनीय की सत्त्व व्युच्छित्ति की है, अन्यत्र द्विचरम समय में, सातावेदनीय, असातावेदनीय इन दोनों में से किसी एक की व्युच्छित्ति की गई है और चरम समय भी यही व्युच्छित्ति की प्रक्रिया है।

इस सम्पूर्ण कार्य का श्रेय आचार्य गुरुवर विद्यासागर एवं श्री डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य को जाता है। क्योंकि आपकी सत्कृपा के बिना यह गुरुतर जिनवाणी की सेवा का अवसर हम लोगों को प्राप्त ही नहीं होता। आप दोनों का आशीष हम लोगों पर सदा बना रहे जिससे निरंतर हम लोग स्व–पर हितकारी कार्यों में संलग्न रहें।

इस ग्रन्थ का प्रकाशन उपाध्याय श्री निर्णय सागर के आशीर्वाद से निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला से हो रहा है। हम लोग आपके अत्यधिक आभारी हैं। उपाध्याय श्री अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी हैं। आपकी श्रुत में अगाध भक्ति है। निरंतर स्व–पर हित में संलग्न हैं। आगे भी हम लोगों को आपका आशीष मिलता रहे। ऐसी आशा है।

पपौरा जी
दीपमालिका 2004

ब्र0 विनोद जैन
ब्र0 अनिल जैन

विषयानुक्रमणिका

क्र.	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	ग्रन्थकार का परिचय	01
2.	मंगलाचरण	05
3.	कर्मों के भेद–प्रभेद	05
4.	कर्मों की पृथक्–पृथक् परिभाषायें	10
5.	प्रकृति बंध	43
6.	बन्ध–अबंध एवं बंध व्युच्छित्ति सारणी	56
7.	स्थिति बंध	59
8.	मूल–उत्तर प्रकृतियों की उत्कृष्ट और जघन्यस्थिति सारणी	67
9.	अनुभाग बंध	71
10.	प्रदेश बंध	83
11.	उदय, अनुदय एवं उदय व्युच्छित्ति सारणी	102
12.	कर्म क्षपणा विधि	104
13.	सत्त्व, असत्त्व एवं सत्त्वव्युच्छित्ति सारणी	112
14.	अंतिम मंगलाचरण	114

पाण्डुलिपियों का परिचय

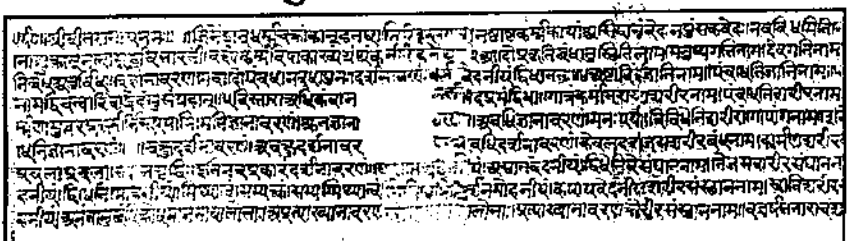

आकार — 12 x 3.5 ",

प्राप्ति स्थल— दि.जैन.सरस्वती भण्डार, नयामंदिर, धर्मपुरा दिल्ली

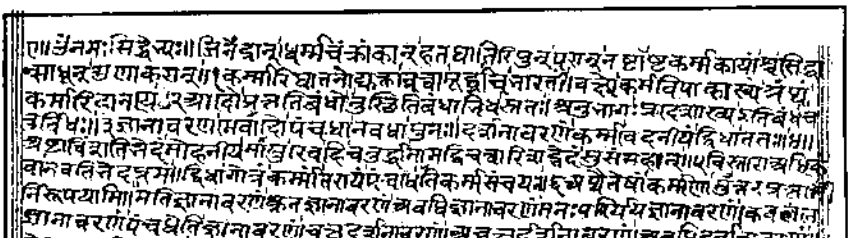

आकार — 9 x 4.5 ",

प्राप्ति स्थल— डॉ. कमलचन्द्र सोगाणी अपभ्रंश भारती, जयपुर

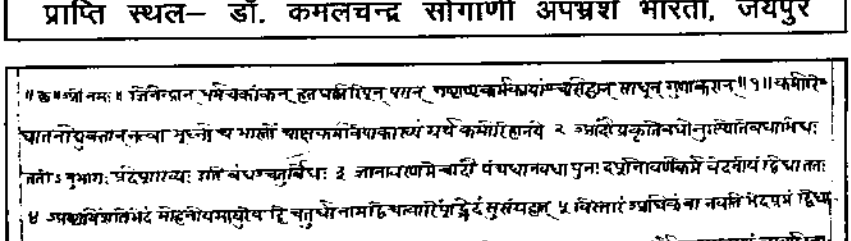

आकार — 10.5 x 4.5 ",

प्राप्ति स्थल— दि.जैन.मंदिर नातेपूते, महाराष्ट्र

आचार्य श्री सकलकीर्ति

विपुल साहित्य निर्माण की दृष्टि से आचार्य सकलकीर्ति का महत्वपूर्ण स्थान है। इन्होंनें संस्कृति एवं प्राकृत वांगमय को संरक्षण की नहीं दिया, अपितु उसका पर्याप्त प्रचार और प्रसार भी किया। हरिवंशपुराण की प्रशस्ति में ब्रह्मजिनदास ने इनको महाकवि कहा है–

तत्पट्टपंकजविकासभास्वान् बभूव निर्ग्रन्थवरः प्रतापी।
महाकवित्यादिकलाप्रवीणः तपोनिधिः श्रीसकलादिकीर्तिः।।

इससे स्पष्ट है कि इनकी प्रसिद्धि महाकवीश्वर के रूप में थी। आचार्य सकलकीर्ति ने प्राप्त आचार्यपरम्परा का सर्वाधिकरूप में पोषण किया है। तीर्थयात्रायें और जनसामान्य में धर्म के प्रति जागरुकता उत्पन्न की और नवमंदिरों का निर्माण कराकर प्रतिष्ठाएँ करायीं। आचार्य सकलकीर्ति ने अपने जीवनकाल में 14 बिम्बप्रतिष्ठाओं का संचालन किया था। गलियाकोट में संघपतिमूलराज ने इन्हीं उपदेश से चतुर्विंशति जिनबिम्ब की स्थापना की थी। नागद्रह जाति के श्रावक संघपतिठाकुर सिंह ने भी कितनी ही बिम्बप्रतिष्ठाओं में योग दिया। आबू में इन्होंने एक प्रतिष्ठा महोत्सव का संचालन किया था, जिसमें तीन चौबीसी की एक विशाल प्रतिमा परिकरसहित स्थापित की गई थी।

निःसंदेह आचार्य सकलकीर्ति का असाधारण व्यक्तित्व था। तत्कालीन संस्कृत, अपभ्रंश, राजस्थानी आदि भाषाओं पर अपूर्व अधिकार था। भट्टारक सकलभूषण में अपने उपदेशरत्नमाला नामक ग्रन्थ की प्रशस्ति में सकलकीर्ति को अनेक पुराणग्रन्थों का रचयिता लिखा है। भट्टारक शुभचन्द्र ने भी सकलकीर्ति को पुराण और काव्य ग्रन्थों का रचयिता बताया है। लिखा है–

''**तच्छिष्याग्रेसरानेकशास्त्रपयोधिपारप्राप्तानाम्, एकावलि–द्विकावलि– कनकावलि, रत्नावलि, मुक्तावलि, सर्वतोभद्र, सिंहविक्रमादि–महातपो वज्रनाशितकर्मपर्वतानाम, सिद्धांतसार–तत्वसार– यत्याचार–द्यनेकराद्धान्तविधातृणाम्, मिथ्यात्वतमो विनाशैकमार्त्तण्डानाम्, अभ्युदय पूर्व निर्वाण सुखावश्यविधायि–जिनधर्माम्बुधिविवर्द्धनपूर्ण चन्द्राणाम्, यथोक्तचरित्राचरण– समर्थननिर्ग्रन्थाचार्यावर्याणाम् श्रीश्रीश्रीसकलकीर्ति भट्टारकाणाम्।**''

अर्थात् पद्नंदि के शिष्य, अनेक शास्त्रों में पारगामी, एकाबलि, द्विकाबलि, रत्नाबलि, मुक्ताबलि, सर्वतोभद्र, सिंहविक्रम आदि महातपों के आचरण द्वारा कर्म रूपी पर्वतों को नष्ट करने वाले, सिद्धांतसार, तत्वसार, यत्याचार आदि आगमग्रन्थों के रचयिता, मिथ्यात्वरूपी अन्धकार को नष्ट करने के लिए सूर्यतुल्य, जिनधर्म रूपी समुद्र को वृद्धिंगत करने के लिए चन्द्रमातुल्य और यथोक्त चारित्र का पालन करने वाले निर्ग्रन्थाचार्य सकलकीर्ति हुए।

अतः स्पष्ट है कि निर्ग्रन्थाचार्य सकलकीर्ति एक बड़े तपस्वी, ज्ञानी धर्म प्रचारक और ग्रन्थरचयिता थे। उस युग में अद्वितीय प्रतिभाशाली एवं शास्त्रों के पारगामी थे।

आचार्य सकलकीर्ति का जन्म वि.सं. 1443 (ई. सन् 1386) में हुआ था। इनके पिता का नाम कर्मसिंह और माता का नाम शोभा था। ये हूंवड़ जाति के थे और अणहिलपुर पट्टन के रहने वाले थे। गर्भ में आने के समय माता को स्वप्नदर्शन हुआ था। पति ने इस स्वप्न का फल योग्य, कर्मठ और यशस्वी पुत्र की प्राप्ति का होना बतलाया था।

बालक का नाम माता–पिता ने पूर्णसिंह या पूनसिंह रखा था। एक पट्टावली में इनका नाम 'पदार्थ' भी पाया जाता है। इनका वर्ण राजहंस के समान शुभ्र और शरीर 32 लक्षणों से युक्त था। पांच वर्ष की अवस्था में पूर्णसिंह का विद्यारंभ संस्कार सम्पन्न किया गया। कुशाग्रबुद्धि होने के कारण अल्पसमय में ही शास्त्राभ्यास पूर्ण कर लिया। माता पिता ने 14 वर्ष की अवस्था में ही पूर्ण सिंह का विवाह कर दिया। विवाहित हो जाने पर भी इनका मन सांसारिक कार्यों के बंधनों में न बंध सका। पुत्र की इस स्थिति से माता–पिता को चिंता उत्पन्न हुई और उन्होंनें समझाया– "अपार सम्पत्ति है, इसका उपभोग युवावस्था में अवश्य करना चाहिए। संयम प्राप्ति के लिए तो अभी बहुत समय है। यह तो जीवन के चौथेपन में धारण किया जाता है। पिता–पुत्र के बीच में जो वार्तालाप हुआ उसे भट्टारक भुवनकीर्ति ने निम्नलिखित रूप में व्यक्त किया है।–

देखवि चंचल चित्त माता पिता कहि बछ सुणि।
अहम् मंदिर बहू वित्त आविसिह कारणि कवइ।।
लहुआ लीलावंत सुख भोगवि संसार तणाए।
पछइ दिवस बहूत, अछिह संयम तप तणाए।।
वयणि तं जि सुणेवि पुत्र पिता प्रति हम कहिए।
निजमन सुविस करेवि धीर जे तरणि तप गहिए।।

ज्योवन गिर गमार पछइ पालइ शीयल घणां।
ते कुहु कवण विचार विण अवसर जे वरसीयिए।।

कहा जाता है कि माता–पिता के आग्रह से ये चार वर्षों तक घर में रहे और 18 वें में प्रवेश करते ही वि.सं. 1463 (ई. सन् 1406) में समस्त सम्पत्ति का त्याग कर भट्टारक पद्मनन्दि के पास नेणवां चले गये। 34वें वर्ष में आचार्य पदवी धारण कर अपने प्रदेश में वापस आये और धर्मप्रचार करने लगे। इस समय ये नग्नावस्था में थे।

आचार्य सकलकीर्ति ने बागड़ और गुजरात में पर्याप्त भ्रमण किया था और धर्मोपदेश देकर श्रावकों में धर्म भावना जागृत की थी। उन दिनों में उक्त प्रदेशों में दिगम्बर जैन मंदिरों की संख्या भी बहुत कम थी तथा साधुओं के न पहुंचने के कारण अनुयायियों में धार्मिक शिथिलता आ गयी थी। अतएव इन्होंनें गांव गांव में विहार कर लोगों के हृदय में स्वाध्याय और भगवद्भक्ति की रुचि उत्पन्न की।

बलात्कारगण इडर शाखा का आरंभ भट्टारक सकलकीर्ति से ही होता है। ये बहुत ही मेधावी, प्रभावक, ज्ञानी और चारित्रवान थे। बागड़ देश में जहां कहीं पहले कोई प्रभाव नहीं था, वि.सं. 1492 में गलियाकोट में भट्टारक गद्दी की स्थापना की तथा अपने आपको सरस्वतीगच्छ एवं बलात्कारगण से सम्बोधित किया। ये उत्कृष्ट तपस्वी और रत्नावली, सर्वतोभद्र, मुक्तावली आदि व्रतों का पालन करने में सजग थे।

स्थितिकाल–

भट्टारक सकलकीर्ति द्वारा वि. सं. 1490 (ई. सन् 1433) वैशाख शुक्ला नवमी शनिवार को एक चौबीसी मूर्ति, विक्रम सम्वत् 1492 (ई. सन्1435) वैशाख कृष्ण दशमी को पार्श्वनाथमूर्ति सं., 1494 (ई. सन्1437) वैशाख शुक्ला त्रयोदशी को आबू पर्वत पर एक मंदिर की प्रतिष्ठा करायी गयी। जिसमें तीन चौबीसी प्रतिमाएँ परिकर सहित स्थापित की गयीं थीं। वि.सं. 1497(ई. सन्1440 मे) एक आदिनाथ स्वामी की मूर्ति तथा सागवाड़ा में आदिनाथ मंदिर की प्रतिष्ठा करायी थी। इसी स्थान में आपने भट्टारक धर्मकीर्ति का पट्टाभिषेक भी किया था।

भट्टारक सकलकीर्ति ने अपनी किसी भी रचना में समय का निर्देश नहीं किया है, तो भी मूर्तिलेख आदि साधनों के आधारपर से उनका निधन वि. सं. 1499 पौष मास में महसाना (गुजरात) में होना सिद्ध होता है। इस प्रकार उनकी आयु 56 वर्ष की आती है।

'भट्टारकसम्प्रदाय' ग्रन्थ में विद्याधर जोहरापुरकर ने इनका समय वि. सं. 1450–1510 तक निर्धारित किया है। पर वस्तुतः इनका स्थितिकाल वि.सं. 1443–1499 तक आता है।

रचनाएँ–

आचार्य सकलकीर्ति संस्कृत भाषा के प्रौढ़ पंडित थे। इनके द्वारा लिखित निम्नलिखित रचनाओं की जानकारी प्राप्त होती है।

1. शान्तिनाथचरित, 2. वर्द्धमानचरित, 3 मल्लिनाथचरित,
4. यशोधरचरित, 5. धन्यकुमारचरित 6. सुकमालचरित
7. सुदर्शनचरित 8. जम्बूस्वामीचरित 9 श्रीपालचरित
10. मूलाचारप्रदीप 11. प्रश्नोत्तरोपासकाचार 12.आदिपुराण– वृषभनाथचरित
13.उत्तरपुराण, 14. सद्भाषितावली–सूक्तिमुक्तावली, 15.पार्श्वनाथपुराण
16. सिद्धांतसारदीपक, 17. व्रतकथाकोष, 18. पुराणसार संग्रह
19. कर्मविपाक, 20. तत्वार्थसारदीपक, 2 1 परमात्मराजस्तोत्र
22. आगमसार, 23. सारचतुर्विंशतिका 2 4 पंचपरमेष्ठीपूजा
25. अष्टाह्निका पूजा 26. सोलहकारणपूजा 27. द्वादशानुप्रेक्षा
28. गणधरवलयपूजा 29. समाधिमरणोत्साहदीपक

राजस्थानी भाषा में लिखित रचनाएँ–

1. आराधना प्रतिबोधसार, 2. नेमीश्वर–गीत 3.मुक्तावली–गीत
4. णमोकार–गीत 5. पार्श्वनाथाष्टक 6.सोलहकारणरासो
7. शिखामणिरास 8. रत्नत्रयरास

ॐनमः सिद्धेभ्यः

कर्मविपाकः

जिनेन्द्रान् धर्मचक्रांकान् हतघातिरिपून् परान्।
नष्टाष्टकर्मकायांश्च सिद्धान्साधून् गुणाकरान्।।1।।
कर्मारिघातनोद्युक्तान् नत्वा मूर्ध्ना च भारतीं।
वक्ष्ये कर्मविपाकाख्यं ग्रंथं कर्मारिहानये।।2।।

आदौ प्रकृतिबंधोनुस्थितिबंधाभिधस्ततः।
अनुभागः प्रदेशाख्य इति बंधश्चतुर्विधः।।3।।
ज्ञानावरणमेवादौ पंचधा नवधा पुनः।
दर्शनावरणं कर्मवेदनीयं द्विधा ततः।।4।।
अष्टाविंशतिभेदं मोहनीयमायुरेव हि।
चतुर्धा नाम द्विचत्वारिंशत्भेदं सुसंग्रहात्।5।।
विस्तारा अधिकं वा नवति भेदप्रमं द्विधा।
गोत्रं कर्मांतरायं पंचधेति कर्मसंचयः।।6।।

अर्थ– अष्टकर्मों के समूह का नाश करने वाले सिद्धों, घातिया कर्मों का नाश करने वाले एवं धर्मचक्र का प्रर्वतन करने वाले तीर्थंकरों, कर्म रूपी शत्रुओं का नाश करने के लिए उद्यत तथा गुणों के भण्डार स्वरूप साधुओं और द्वादशांग जिनवाणी को सिर से नमस्कार कर कर्म रूपी शत्रुओं को नाश करने के लिए कर्म विपाक नाम का ग्रन्थ कहूँगा।।1–2।।

प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बंध के भेद से कर्म बंध चार प्रकार का है।।3।।

ज्ञानावरण 5, दर्शनावरण 9, वेदनीय 2, मोहनीय 28, नामकर्म 42, 93 अथवा और अधिक गोत्र 2 और अंतराय के 5 इस प्रकार कर्मों के 148 भेद जानना चाहिए।। 4–6।।

अथैतेषां कर्मणामुत्तरप्रकृतिं निरूपयामि–

मतिज्ञानावरणं श्रुतज्ञानावरणं अवधिज्ञानावरणं मनःपर्यय–ज्ञानावरणं केवलज्ञानावरणं पंचधेति ज्ञानावरणं।

चक्षुदर्शनावरणं अचक्षुदर्शनावरणं अवधिदर्शनावरणं केवलदर्शनावरणं निद्रा–निद्रा निद्रा प्रचला–प्रचला प्रचला स्त्यानगृद्धिः इति नव प्रकारं दर्शनावरणं।

सातवेदनीयं असातवेदनीयं द्विधेति वेदनीयं।

दर्शनमोहनीयं चारित्रमोहनीयं द्विधेति मोहनीयं। मिथ्यात्वं सम्यक्त्वं सम्यग्मिथ्यात्वं त्रिविधमिति दर्शनमोहनीयं। कषाय–वेदनीयं नोकषायवेदनीयं द्विधेति चारित्रमोहनीयं।

अब कर्मों की उत्तरप्रकृतियों का निरूपण करता हूँ।

मति ज्ञानावरण, श्रुत ज्ञानावरण, अवधि ज्ञानावरण, मनः पर्यय ज्ञानावरण एवं केवल ज्ञानावरण इस प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म पांच प्रकार का है।

चक्षु दर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधि दर्शनावरण, केवल दर्शनावरण, निद्रानिद्रा, निद्रा, प्रचलाप्रचला, प्रचला एवं स्त्यानगृद्धि इस प्रकार दर्शनावरण कर्म नौ प्रकार का है।

सातावेदनीय और असातावेदनीय इस प्रकार वेदनीय कर्म दो प्रकार का है।

दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय, इस प्रकार मोहनीय कर्म दो प्रकार का है।

दर्शनमोहनीय तीन प्रकार का है – मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति।

चारित्रमोहनीय कर्म दो प्रकार का है – कषायवेदनीय और नोकषाय वेदनीय।

अनंतानुबंधि–क्रोधमानमायालोभाः अप्रत्याख्यानावरण क्रोधमानमायालोभाः प्रत्याख्यानावरण–क्रोधमानमायालोभाः संज्वलन–क्रोधमानमायालोभाः षोडशप्रकारमिति कषायवेदनीयं। हास्यः रति : अरतिः शोकः भयः जुगुप्सा स्त्रीवेदः पुंवेदः नपुंसकवेदः नवविधमिति नोकषायवेदनीयं। नरकायुः तिर्यगायुः मनुष्यायुः देवायु चतुर्धेत्यायुः।

नरकगतिनाम तिर्यग्गगतिनाम मनुष्यगतिनाम देवगतिनाम चतुर्धेति गतिनाम। एकेन्द्रियजातिनाम द्वीन्द्रियजातिनाम त्रीन्द्रियजातिनाम चतुरिन्द्रियजातिनाम पंचेन्द्रियजातिनाम पंचधेति जातिनाम। औदारिकशरीरनाम वैक्रियिकशरीरनाम आहारकशरीरनाम तैजसशरीरनाम कार्मणशरीरनाम पंचधेति शरीरनाम।

अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ एवं संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ इस प्रकार कषायवेदनीय 16 प्रकार का है।

नोकषायवेदनीय नव प्रकार का है– हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद।

आयुकर्म चार प्रकार का है – नरकायु, तिर्यंचायु मनुष्यायु और देवायु।

नामकर्म 93 प्रकार का है – नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति इस प्रकार गतिनामकर्म चार प्रकार का है।

जाति नामकर्म पांच प्रकार का है –एकेन्द्रिय जाति, द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति और पंचेन्द्रिय जाति ।

शरीर नामकर्म पांच प्रकार का है –औदारिकशरीर , वैक्रियिकशरीर, आहारक शरीर, तैजसशरीर और कार्मण शरीर ।

औदारिक-शरीरांगोपांगनाम वैक्रियिक-शरीरांगोपांगनाम आहारकशरीरांगोपांगनाम त्रिधेति शरीरांगोपांगनाम। निर्माण-नाम। औदारिकशरीरबंधननाम वैक्रियिकशरीरबंधनाम आहारकशरीरबंधननाम तैजसशरीरबंधननाम कार्मणशरीर-बंधननाम पंचधेति शरीरबंधननाम। औदारिकशरीरसंघातनाम वैक्रियिकशरीरसंघातनाम आहारकशरीरसंघातनाम तैजस-शरीरसंघातनाम कार्मणशरीरसंघातनाम पंचधेति- शरीर-संघातनाम। समचतुरस्रशरीरसंस्थाननाम न्यग्रोध- परिमंडल-शरीरसंस्थाननाम स्वातिशरीरसंस्थाननाम वामनशरीर-संस्थाननाम कुब्जकशरीरसंस्थाननाम हुंडकशरीर संस्थाननाम षट्विधमिति शरीरसंस्थाननाम।

शरीर आंगोपांग नामकर्म तीन प्रकार का है – औदारिक शरीर आंगोपांग, वैक्रियिक शरीर आंगोपांग और आहारक शरीर आंगोपांग।

शरीर बन्धन नामकर्म पांच प्रकार है – औदारिक शरीर बन्धन नामकर्म, वैक्रियिक शरीरबन्धन नाम, आहारक शरीरबन्धननाम, तैजस शरीरबन्धन नाम और कार्मण शरीरबन्धन नाम ।

शरीर संघात नामकर्म पांच प्रकार का है – औदारिक शरीरसंघात नामकर्म, वैक्रियिक शरीरसंघात नामकर्म, आहारक शरीरसंघात नामकर्म, तैजस शरीरसंघात नामकर्म, कार्मण शरीरसंघात नामकर्म।

शरीर संस्थान नामकर्म छह प्रकार का है – समचतुरस्र संस्थान नामकर्म, न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान नामकर्म, कुब्जक संस्थान नामकर्म, स्वाति संस्थान नामकर्म, वामनसंस्थान नामकर्म, हुण्डक संस्थान नामकर्म।

वज्रर्षभनाराचशरीरसंहनननाम वज्रनाराचशरीरसंहनननाम नाराच-शरीरसंहनननाम अर्द्धनाराचशरीरसंहनननाम कीलकशरीर-संहनननाम असंप्राप्तासृपाटिकाशरीरसंहनननाम षट्प्रकारमिति शरीरसंहनननाम। कर्कशनाम मृदुनाम गुरूनाम लघुनाम स्निग्ध नाम रूक्षनाम शीतनाम उष्णनाम अष्टविध- मिति स्पर्शनाम तिक्तनाम कटुकनाम कषायनाम आम्लनाम मधुरनाम पंचधेति रसनाम कृष्ण, नील, रुधिर, पीत, शुक्ल पंचधेतिवर्णनाम। सुगंध दुर्गंध द्विधा गंधनाम । नरकगति-प्रायोग्यानुपूर्व्यनाम तिर्यग्गति-प्रायोग्यानुपूर्व्यनाम मनुष्यगति- प्रायोग्यानुपूर्व्यनाम। देवगति-प्रायोग्यानुपूर्व्यनाम चतुर्धेति-प्रायोग्यानुपूर्व्यनाम। अगुरूलघु-नाम। उपघातनाम। परघातनाम। आतपनाम। उद्योतनाम। उच्छ्वासनाम। प्रशस्तविहायोगतिनाम। अप्रशस्तविहायो-गतिनाम। प्रत्येकशरीरनाम। साधारण शरीरनाम। त्रसनाम।

संहनन नामकर्म छह प्रकार का है – वज्रर्षभनाराच संहनन नामकर्म वज्रनाराचसंहनन नामकर्म, नाराच संहनननामकर्म, अर्धनाराचसंहनन नामकर्म, असंप्राप्तासृपाटिका संहनननामकर्म।

स्पर्शनामकर्म के आठ भेद है – कठोर, मृदु, गुरु, लघु, रूक्ष, स्निग्ध, शीत और उष्ण।

रसनामकर्म के पांच भेद है – तिक्त, कटुक, कषायला, आम्ल और मधुर रस।

गंध नामकर्म दो प्रकार का है– सुगंध एवं दुर्गंध।

वर्ण नामकर्म पांच प्रकार का है– कृष्ण, नील, रक्त, पीत और शुक्ल।

आनुपूर्वी नामकर्म चार प्रकार का है – नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंच-गत्यानुपूर्वी, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और देवगत्यानुपूर्वी। अगुरूलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, प्रशस्त विहायोगति, अप्रशस्त विहायोगति,प्रत्येक शरीर नामकर्म, साधारण शरीर नामकर्म,त्रसनामकर्म।

स्थावरनाम। सुभगनाम। दुर्भगनाम। सुस्वरनाम। दुस्वरनाम। शुभनाम। अशुभनाम। सूक्ष्मनाम। बादरनाम। पर्याप्तिनाम। अपर्याप्तिनाम। स्थिरनाम। अस्थिरनाम। आदेयनाम। अनादेय नाम। यशःकीर्तिनाम। अयशःकीर्तिनाम। तीर्थंकरत्वनाम। त्रिनवतिप्रकारं नामकर्मेति। उच्चैर्गोत्रं नीचैर्गोत्रं द्विधेति गोत्रं।

लाभांतरायः दानांतरायः भोगांतरायः उपभोगांतरायः वीर्यांतरायः पंचधेत्यंतरायः एवमष्टचत्वारिंशदधिकशतमुत्तर प्रकृतयो विज्ञेयाः।

अथ तासां कर्मप्रकृतिनां स्वमावं व्यावर्णयामि। अवग्रहे-हादिषट्त्रिंशदधिकत्रिंशत्-प्रमान् मतिज्ञानभेदाना- वृणोतीति मतिज्ञानावरणं। यावंतो मतिज्ञानभेदास्तावंत आवरण भेदाः ज्ञातव्याः। ये केचन ग्रहिलाविकलाबधिराबुद्धिहीनाश्चात्र भवंति ते मतिज्ञानावरणोदयनैव।

स्थावर नामकर्म, सुभग नामकर्म,दुर्भगनामकर्म, दुस्वरनामकर्म, शुभनामकर्म, अशुभनामकर्म, सूक्ष्मनामकर्म, वादर नामकर्म, पर्याप्त नामकर्म, अपर्याप्त नामकर्म, स्थिर नामकर्म, अस्थिर नामकर्म, आदेय नामकर्म, अनादेय नामकर्म, यशःकीर्ति, अयशः कीर्ति, तीर्थंकरनामकर्म।

गोत्र कर्म दो प्रकार का है – उच्चगोत्र और नीचगोत्र।

लाभांतराय, दानांतराय, भोगांतराय, उपभोगांतराय और वीर्यांतराय इस प्रकार अंतराय कर्म पांच प्रकार का है।

इस प्रकार कर्मो की एक सौ अठतालीस प्रकृतियाँ जानना चाहिये। अब उन प्रकृतियों के स्वभाव का वर्णन करता हूँ।

अवग्रहादि 336 मतिज्ञान के भेदों को जो आवरण करता है उसे मति ज्ञानावरण जानना चाहिये । मतिज्ञान के जितने भेद होते है, उतने ही आवरण जानना चाहिये ।

ग्रहिल, विकल, वधिर तथा बुद्धिहीन जो लोग यहाँ दृष्टिगोचर होते है। वे मति ज्ञानावरण कर्म के उदय से ही होते हैं।

पर्याय-पर्याय-समासादिविंशतिसंख्यान् श्रुतज्ञान-भेदाना-वृणोतीति श्रुतज्ञानावरण-कर्म। ये मूकामूर्खाश्चात्र स्युः ते श्रुतज्ञानावरणोदयेनैव। रूपीद्रव्य-भवांतर-प्रत्यक्ष- परिच्छेद-कानुगाम्यननुगामिवर्द्धमानहीयमानावस्थितानवस्थित भेदभिन्न-षट्विधावधिज्ञानाच्छादकमवधिज्ञानावरणं। सूक्ष्म पदार्थ-प्रत्यक्ष-परिज्ञायकं ऋजुविपुलमतिभेदेन द्विविधं मनःपर्यय-ज्ञानं तदावरणकारणं मनःपर्ययज्ञानावरणं द्विविधं उत्तरोत्त रप्रकृति-भेदेन। त्रिकालविषयसमस्तलोकालोक- द्रव्यगुणपर्याययुगपत् -प्रत्यक्षप्रकाशकं केवलज्ञानमावृणोतीति केवलज्ञानावरणं।

जो कर्म पर्याय,पर्याय समास आदि 20 प्रकार के श्रुतज्ञान के भेदों को आवरण करता है उसे श्रुतज्ञानावारण कर्म जानना चाहिये। यहां जो मूक और मूर्ख जन है वे श्रुतज्ञानावरण कर्म के उदय के कारण है।

भवांतर रूपी द्रव्य को जानने वाला अनुगामी, अननुगामी, वर्द्धमान, हीयमान, अवस्थित और अनवस्थित छह भेदों वाले अवधि-ज्ञान को आच्छादन करने वाला ज्ञान अवधि ज्ञानावरण है।

सूक्ष्म पदार्थो का जानने वाला ऋजु- विपुलमति के भेद से दो प्रकार के मनः पर्यय ज्ञान को आवरण करने वाला मनःपर्यय ज्ञानावरण कर्म है।

त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थो को जानने वाले तथा लोकालोक के समस्त द्रव्य, गुण एवं पर्यायों को एक समय में युगपत् जानने वाले ज्ञान को आवरण करने वाले कर्म को केवल ज्ञानावरण कर्म कहते है।

यथा देवतामुखे पट आच्छादयति मेघपटलं वा भानुं तथा ज्ञानावरणकर्म हि आत्मज्ञानमाच्छदयति। रूपिद्रव्यावलोकनक्षमं चक्षुदर्शनं तदावरणकरं यत् कर्म तत् चक्षुदर्शनावरणं। येंऽधा दृश्यंते ते तस्यैव कर्मोदयेन। येन शेषचतुरिंद्रियमनोऽवलंवनेन यदवलोकनं तदचक्षुदर्शनं तस्याच्छादकं यत् कर्म तत-चक्षुदर्शनावरणं। रूपिवस्तुसामान्यावलोकनमवधिदर्शनं तस्या-वरणमवधिदर्शनावरणं। युगपत्-त्रिकालगतद्रव्यगुणपर्यायसहित -लोकालोक--सामान्यविशेषप्रकाशकेवलज्ञानाविनाभूतं केवल -दर्शनं तस्यावरणं यत् कर्म तत् केवलदर्शनावरणं।

जिस प्रकार प्रतिमा के मुख पर वस्त्र तथा सूर्य के सम्मुख मेघपटल, मूल पदार्थ के स्वरूप को प्रकाशित नहीं होने देते उसी प्रकार ज्ञानावरण कर्म को जानना चाहिये। वह आत्मा के स्वरूप को प्रकाशित नहीं होने देता है।

रूपी द्रव्य को देखने में समर्थता चक्षुदर्शन है। इस चक्षुदर्शन के आवरण करने वाले कर्म को चक्षुदर्शनावरणी कहते है । यहां जो अंधे लोग दृष्टिगोचर होते है वे चक्षुदर्शनावरण कर्म के उदय से हैं।

चक्षुरिन्द्रिय के अतिरिक्त शेष चार इन्द्रियों के और मन के द्वारा वस्तु का सामान्य ग्रहण अचक्षुदर्शन है, उसका आवरण करने वाला कर्म अचक्षुदर्शनावरणीय है ।

रूपी पदार्थो का सामान्य ग्रहण अवधिदर्शन है, उसका आवरण करने वाला अवधिदर्शनावरणीय है।

युगपत् त्रिकालवर्ती द्रव्य, गुण और पर्याय सहित लोकालोक का सामान्य प्रकाशक केवलदर्शन है, उसके आवारक कर्म का नाम केवलदर्शनावरणीय है।

मदखेदक्लमविनाशार्थो यः स्वापः सा निद्रा तस्या जनकं यत् कर्म तत् निद्रादर्शनावरणं। यः सुप्तः स्वल्पशब्दश्रवणेन जागर्ति तस्य निद्रा विज्ञेया। निद्राया उपर्युपरि या प्रवर्त्तमाना सा निद्रानिद्रा तस्या कारणं निद्रानिद्रा–दर्शनावरणं। निद्रानिद्रा कर्मोदयेन वृक्षाग्रे समभूमौचांगीं घोरयन् न घोरयन् वा निर्भरं शेते कष्टेन जागर्ति। या स्वापक्रियायामात्मानं प्रचलयति सा प्रचला। आसीनस्यापि नेत्रगात्रविक्रियासूचिका तस्या उत्पादकं यत् कर्म तत् प्रचला–दर्शनावरणं। प्रचलायास्तीव्रोदयेन वालुकाभृते इव लोचने भवतः गुरु भारावष्टब्धमिव शिरो भवति।

मद, खेद और परिश्रमजन्य थकावट को दूर करने के लिये नींद लेना निद्रा है । उस निद्रा को उत्पन्न करने वाला कर्म निद्रा दर्शनावरण है । जो प्राणी अल्प शब्द के द्वारा ही सचेत हो जाता है वह निद्रा है । इस निद्रा के ऊपर जो प्रर्वतमान है अर्थात् जो दूसरों के द्वारा उठाये जाने पर भी नही उठता है वह निद्रा – निद्रा है, इस निद्रानिद्रा का कारण निद्रा–निद्रा दर्शनावरण है ।

निद्रा–निद्रा प्रकृति के तीव्र उदय से जीव वृक्ष के शिखर पर विषम भूमि पर घुरघुराता हुआ या नहीं घुरघुराता हुआ निर्भर अर्थात् गाढ़ निद्रा में सोता है।

जो क्रिया आत्मा को चलायमान करती है वह प्रचला है, यह प्रचला बैठे हुये प्राणी के भी नेत्र,गात्र की विक्रिया की सूचक है, इसका उत्पादक जो कर्म है, वह प्रचला दर्शनावरण है। प्रचला प्रकृति के तीव्र उदय से लोचन वालुका से भरे हुए के समान हो जाते है सिर गुरुभार को उठाये हुये के समान भारी हो जाता है और नेत्र पुनः पुनः उन्मीलन एवं निमीलन करने लगते है ।

पुनः पुनः लोचने उन्मीलयति निमीलियति पततमात्मानं धारयति प्राणी स्थितोपि शेते प्रचलैव। पुनः पुनः प्रवर्त्तमाना प्रचला-प्रचला तस्या जनकं यत् कर्म तत् प्रचला-प्रचला -दर्शनावरणं। प्रचला- प्रचलायास्तीव्रोदयेनासीनोत्थितो वा गलल्लालं मुखं पुनः शरीरं शिरश्च कंपयन्निर्भरं शेते। (पर्यटन् वा स्वप्ने) यद्वशादात्मा रौद्रं बहुदिवाकृत्यं कर्म करोति तत् स्त्यानगृद्धिदर्शनावरणं। स्त्यानगृद्धिदर्शनावरणोदये- नोत्थापितोपि पुनः शीयते सुप्तोऽतिकर्म करोति दंतान् कटकटायमानः शेते। यथा प्रतीहारोः राज्ञो दर्शनं कर्त्तुं न ददाति तथा दर्शनावरणं कर्म स्वात्मानं दृष्टुं न प्रयच्छति।

प्रचला के उदय से जीव बैठा हुआ भी सोता है । प्रचलाकर्म का पुनः पुनः प्रवर्तमान होना प्रचला – प्रचला है , इस प्रचला प्रचला का उत्पादक कर्म प्रचला प्रचला दर्शनावरण है।

प्रचला प्रचला प्रकृति के तीव्र उदय से बैठा या खड़ा हुआ मुंह से गिरती हुई लार सहित तथा बार – बार कंपते हुए शरीर और सिर से युक्त होता हुआ जीव निर्भर सोता है।

जिस कर्म के उदय से दिन में करने योग्य अन्य रौद्र कार्यो को रात्रि में कर डालता है वह स्त्यानगृद्धि दर्शनावरण है। स्त्यानगृद्धि के तीव्र उदय से उठाया गया भी जीव पुनः सो जाता है सोता हुआ भी कुछ क्रिया करता रहता है तथा सोते हुये भी बड़बड़ाता है और दांतों को कड़कड़ाता है।

जैसे प्रतिहार राजा के दर्शन नहीं करने देता है वैसे दर्शनावरण कर्म भी स्वात्मा के सामान्यग्रहण रूप दर्शन गुण को रोकता है ।

मनोज्ञान्नपानवस्त्राभरण–शुभ–शरीरादि–द्रव्यैः उत्तम –विमानधवल–गृहादि–दिव्यक्षेत्रैः शीतोष्णादिरहितसाम्यकालेन उपशमपरिणामेन च देवगत्यादौ पुण्यवतां यत् कर्म सुखं करोति तत् सातावेदनीयं। यदुदयादात्मा नरकगत्यादौ तीव्रं दुखं लभते विषकंटाकाद्यनिष्टवस्तुकुत्सितदेहादिद्रव्यैः नरकबिलबंदिगृहादि –क्षेत्रैः शीतोष्णादिव्याप्तकालेन कषायाद्याकुलितभावेन रोगसमूहक्षुधातृषावधबंधादिभिश्च तदसातवेदनीयं। यथा मधुलिप्तखड्गधारा स्वादुना जिह्वायाः स्तोकं सुखं जनयति तत् कर्त्तनेन महादुःखं करोति तथासातावेदनीय देहिनां स्वल्पं शर्म विधत्ते असातवेदनीयं च धनतरं दुखं कुरुते।

मनोज्ञ अन्नपान , वस्त्र , आभूषण शुभ शरीरादि द्रव्य, उत्तम विमान– श्वेतगृहादि दिव्य क्षेत्रों, शीत उष्ण की वाधा रहित काल उपशम परिणामों से पुण्यवान जीवों को देवादि गति में जो कर्म सुख को उत्पन्न करता है, वह सातावेदनीय है।

जिस कर्म के उदय से नरकादि गति में तीव्र दुःख प्राप्त होता है विष कंटक आदि अनिष्ट पदार्थ कुत्सित शरीर आदि द्रव्य, नरकबिल –काराग्रह आदि क्षेत्र शीत उष्ण की वाधा से व्याप्त काल, कषाय आदि आकुलित भाव, व्याधि समूह क्षुधा तृषा वध बंधनआदि जन्य दुःख का अनुभव होता है, वह असाता वेदनीय है।

जैसे मधु से लिप्त तलवार स्वाद से जिह्वाजन्य अल्पसुख को उत्पन्न करती है और कटने से महा दुःख उत्पन्न करती है उसी प्रकार सातावेदनीय कर्म प्राणियों को अल्प सुख उत्पन्न करता है पश्चात् दुख का उत्पादक है। असातावेदनीय कर्म बहुत दुःख को उत्पन्न करता है ।

आप्तागमतत्त्वगुर्वादिषु निर्ग्रंथमोक्षमार्गे च रूचिः श्रद्धा दर्शनं तत् मोहयति विपरीतं करोति दर्शनमोहनीयं। यदुदयाददेवे देवबुद्धिः अतत्त्वे तत्त्वबुद्धिः अगुरौं गुरुबुद्धिः अधर्मे धर्मबुद्धिः अगुणे गुणबुद्धिः विपरीतामतिश्च जायते तन्मिथ्यात्वं कौद्रव–तुषरूपं। यथा ज्वरी शर्करादुग्धं कटुकं वेत्ति निबादिकं च मधुरं जानाति तथा मिथ्यात्व–ज्वर–व्याप्तोंगी धर्मं पापं जानाति पापं धर्मं जानाति विकलवत् स्वेच्छया पदार्थानादत्ते न मनाग्विचार चतुरो भवति। यस्य विपाकेनाप्तागम–पदार्थ निर्ग्रंथ–मोक्ष–मार्गादिषु श्रद्धायाः शैथिल्यं भवति तत् सम्यक्त्वप्रकृतिं कोद्रव–तंदुल–सदृशं।

आप्त, आगम, तत्त्व गुरु आदि एवं निर्ग्रथ मोक्ष मार्ग में प्रतीति श्रद्धा दर्शन है उस श्रद्धा को जो विपरीत करता है वह दर्शन मोहनीय कर्म है। जिस कर्म के उदय से अदेव में देव बुद्धि , अतत्त्व में तत्त्व बुद्धि, अगुरु में गुरुबुद्धि, अधर्म में धर्मबुद्धि ,अगुण में गुण बुद्धि इस प्रकार विपरीत बुद्धि का होना मिथ्यात्व है कोदों के तुष के समान ।
जैसे ज्वर पीड़ित व्यक्ति मधुर दुग्ध को कड़वा जानता है, निंब आदि को मधुर जानता है उसी प्रकार मिथ्यात्व ज्वर से पीड़ित प्राणी धर्म को पाप जानता है, पाप को धर्म मानता है। उन्मत्त पुरुष जिस प्रकार इच्छानुसार पदार्थो के स्वरूप को मानता है उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि जीव को जानना चाहिए ।
जिस कर्म के उदय से आप्त , आगम , पदार्थ , निर्ग्रथ मोक्षमार्ग में श्रद्धा शिथिल होती है वह सम्यक्त्व प्रकृति है। कोदों के चावल के समान ।

यस्योदयेनाप्तागम-तत्त्व-गुर्वादौ मिथ्यागमगुर्वादौ च निश्चय उत्पद्यते तत् सम्यग्मिथ्यात्वं अर्द्धशुद्ध-तंदुल-समानं। दुःख-सस्य-पूरितं कर्म-क्षेत्रं कृषंति फलवत् कुर्वंतीति कषायाः। अंनतान् भवान् मिथ्यात्वासंयमौघानुबंधी शीलं येषां ते अनंतानुबंधिनः अथवा अनंतेषु भवेष्वनुबंधः संस्कारो विद्यते येषां ते अनंतानुबंधिनः सम्यक्त्वदेशसंयम-निरोधकाः। यस्योदयादात्मा भवांतरेपि पाषाण-रेखा-निभं क्रोधं न त्यजति सोनंतानुबंधि क्रोधः। यद् विपाकेन जीवो भवांतरेपि स्वाभिमानं शैल-स्तंभ-समानं न मुंचति सोनंतानुबंधिमानः।

जिस कर्म के उदय से आप्त, आगम, तत्त्व, गुरु आदि तथा कुशास्त्र, कुदेव, कुगुरु आदि में युगपत् श्रद्धा उत्पन्न होती है, वह सम्यग्मिथ्यात्व कहलाता है। इसके उदय से अर्द्ध शुद्ध मदशक्ति वाले कोदों और ओदन के उपयोग से प्राप्त हुये मिश्र परिणाम के समान उभयात्मक परिणाम होता है।

दुःख धान्य से पूरित कर्म रूपी क्षेत्र को जो फलवती करती है वह कषाय है।

अनन्त भवों तथा मिथ्यात्व , असंयम को बांधना ही जिनका स्वभाव है। वे अनन्तानुबंधी कहलाते है अथवा अनंत भवों में जिनका अनुबंध रूप संस्कार विद्यमान रहता है वे अनंतानुबंधी कहलाते है। **"यह सम्यक्त्व एवं देश संयम का विनाश करने वाली कषाय है।"**

जिसके उदय से आत्मा भवान्तर में भी पाषाण रेखा के सामान क्रोध को नहीं छोड़ता है, वह अनंतानुबंधी क्रोध है।

जिसके उदय से जीव भवांतर में भी शैल समान मान को नहीं छोड़ता है, वह अनंतानुबंधी मान है।

यस्योदयेन प्राणी मरणेऽपि जातु तीव्रवक्रभावं वंचनपरिणामं वंशमूलतुल्यं न त्यजति सानंतानुबंधिमाया। यद्वशान्मिथ्यादृष्टि मृत्युकालेपि कृमिरंगवत् किंचित् लोभं न त्यजेत् सानंतानुबंधिलोभः।अप्रत्याख्यानं संयमासंयममावृणोतीति अप्रत्याख्यानावरणाः देशसंयमघातिनः। यद् विपाकेनांगी हलरेखासमानं क्रोधं त्युक्तुमसमर्थो भवति सोऽप्रत्याख्यानक्रोधः। यस्योदयेन जीवानामस्थिसादृश्यो गर्वो जायते सोऽप्रत्याख्यानमानः। यत् वशात्देहिनां मेषश्रृंगसमाना निकृति वंचना मनसि भवति सोऽप्रत्याख्यानमाया।

जिसके उदय से प्राणी का मरण होने पर भी वंश वृक्ष की मूल (जड़) के समान तीव्र माया रूप परिणाम को नहीं छोड़ता है, वह अनंतानुबंधी माया है।

जिसके उदय से मिथ्यादृष्टि मरण काल में भी कृमिरंग के समान लोभ का त्याग नहीं करता, वह अनंतानुबंधी लोभ है।

अप्रत्याख्यान संयमासंयम का नाम है उस अप्रत्याख्यान (संयमासंयम) को जो आवरण करता है वह अप्रत्याख्यानावरणीय है। यह कषाय देश संयम को विनाश करने वाली है।

जिसके उदय से जीव हल रेखा के समान क्रोध को त्यागने में असमर्थ होता है, वह अप्रत्याख्यान क्रोध है।

जिसके उदय से जीव में अस्थि के समान गर्व होता है, वह अप्रत्याख्यान मान है।

जिसके उदय से प्राणी के भेंड़े के सींग के समान मन में वंचना होती है, वह अप्रत्याख्यान माया है।

यस्योदयेनासुभृतां कज्जलसमानो लोभो जायते सो अप्रत्याख्यानलोभः। प्रत्याख्यानं-संयममावृण्वन्तीति प्रत्याख्यानावरणः क्रोधमानमायालोभाः महाव्रतघातिनः। यस्योदयेनात्मा बालुकारेखासमानं क्रोधं करोति स प्रत्याख्यान-क्रोधः। यद्विपाकेनांगी दारूसादृशमभिमानं विधत्ते स प्रत्याख्यानमानः। यद्वशात् जीवो गोमूत्रिकासमानं कौटिल्यं हंतुमसमर्थः सा प्रत्याख्यानमाया। यस्योदयेन देही कर्दमतुल्यं लोभं न त्यजति स प्रत्याख्यानलोभः। संयमेंन सहैकीभूय ये ज्वलंति अथवा येषु सत्सु यथाख्यातसंयमो ज्वलंतीति ते संज्वलन क्रोधमानमायालोभाः यथाख्यातचारित्रघातिनः।

जिसके उदय से कज्जल के समान लोभ उत्पन्न होता है, वह अप्रत्याख्यान लोभ है।

प्रत्याख्यान संयम है। उस संयम को जो आवरण करता है वह प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ है। यह महाव्रत विनाशक है। जिसके उदय से आत्मा वालुका रेखा के समान क्रोध को करता है वह प्रत्याख्यान क्रोध है।

जिसके उदय से जीव के दारू के सादृश गर्व रहता है वह प्रत्याख्यान मान है।

जिस कषाय के उदय से जीव गोमूत्रिका के समान कुटिलता छोड़ने में असमर्थ है, वह प्रत्याख्यान माया है।

जिस कषाय के उदय से जीव कर्दम (कीचड़) के समान लोभ छोड़ने में असमर्थ है, वह प्रत्याख्यान लोभ है।

संयम के अवस्थान होने में एक होकर जो ज्वलित होते है अर्थात् चमकते है या जिनके सद्भाव में संयम चमकता रहता है, वे संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ हैं।

यदुदयेन मुनिं र्जलरेखानिभं क्रोधं हंतुमक्षमः स संज्वलन क्रोधः। यस्य विपाकेन यति र्लतासमानं मानं हंतुमसमर्थः स संज्वलनमानः। यस्या उदयेन संयमी अवलेखनीसमानं निकृतिं हृदस्त्युक्तुमक्षमः सा संज्वलनमाया। यत् विपाकेन महात्मा हरिद्रातुल्यं लोभं निराकर्तुं न समर्थः स संज्वलनलोभः। ईषत् कषायाः नोकषायाः यथाख्यातसंयमघातिनः। यत् कर्म निमित्तेन रागहेतु हास उत्पद्यते तत् हास्यं। येन पुद्गल-स्कंधोदयेन द्रव्यक्षेत्रकालभावेषु रतिं जायते सा रतिः।

यह कषाय यथाख्यात चारित्र की उत्पत्ति में प्रतिबंधक होती है।

जिस कषाय के उदय से जीव जल रेखा के समान क्रोध छोड़ने में असमर्थ रहता है, वह संज्वलन क्रोध है।

जिस कषाय के उदय से मुनि लता के समान मान कषाय से छोड़ने में असमर्थ रहता है, वह संज्वलन मान है।

जिसके उदय से मुनि अवलेखनी के समान माया को हृदय से छोड़ने में असमर्थ रहता है, वह संज्वलन माया है।

जिसके विपाक से मुनि हल्दी के समान लोभ कषाय का निराकरण करने में असमर्थ है, वह संज्वलन लोभ है।

ईषत् कषाय नोकषाय है। (नोकषाय में कषाय की अपेक्षा स्थिति अनुभाग और उदय की अपेक्षा अल्पता पाई जाती है।) जो यथाख्यात संयम की घातक हैं।

जिस कर्म स्कंध के उदय से जीव के हास्य निमित्तक राग उत्पन्न होता है, वह हास्य है।

जिन कर्म स्कन्धों के उदय से द्रव्य , क्षेत्र , काल और भावों में राग उत्पन्न होता है, वह रति है।

यस्य कर्मविपाकेन द्रव्यादिषु तपोध्यानाध्ययनादिषु चारति भवति सा अरतिः। येन पुद्गलविपाकेन देहिनां शोकः प्रादुर्भवति स शोकः। येन पुद्गलस्कंधेरुदयाद् गतौ भयं जायते जीवस्य तेषां भयमिति संज्ञा। येषां कर्मणां वशेन जुगुप्सा घृणा उत्पद्यते तेषां जुगुप्सा इति संज्ञा। येन पुद्गलस्कंधोदयेन पुरुषे आकांक्षा प्रवर्त्तते स स्त्रीवेदः। येन कर्मणा वनितायामिच्छा जायते स पुंवेदः। येन दुष्कर्मविपाकेनेष्टिकाग्निसादृश्य येन स्त्रीपुरुष-योराकांक्षा उत्पद्यते स नपुंसकवेदः। एवं सर्वे कषायाः।

जिन कर्म स्कन्धों के उदय से द्रव्य आदि एवं तप, ध्यान अध्ययन आदि में अरति (अरूचि) होती है, वह अरति है।

जिन कर्म स्कंधों के उदय से जीव के शोक उत्पन्न होता है, वह शोक है ।

जिन कर्म स्कंधों के उदय से जीवों के वर्तमान गति में भीति उत्पन्न होती है, वह भय कर्म है ।

जिस कर्म के उदय से ग्लानि घृणा उत्पन्न होती है, वह जुगुप्सा है।

जिन कर्म स्कंधों के उदय से पुरुष में आकांक्षा उत्पन्न होती है, वह स्त्रीवेद है ।

जिस कर्म के उदय से मनुष्य की स्त्रियों में अभिलाषा उत्पन्न होती है, वह पुरुष वेद है।

जिस कर्म के उदय से ईटों के अवा की अग्नि के समान स्त्री और पुरुष इन दोनों में भी आकांक्षा उत्पन्न होती है, वह नपुंसक वेद है।

इस प्रकार सभी कषायों का वर्णन पूर्ण हुआ।

येन दुष्कर्मोदयेन जीवस्योर्द्धगतिस्वभावस्य तीव्रवेदना-व्याप्तेषु -दुस्सह-शीतोष्ण-व्याकुलेषु नरकेषु दीर्घतर-जीवनेनावस्थानं भवति तत् नरकायुः। यद् विपाकेन दुःखाकुलः प्राणी तिर्यग्गतिषु जीवति तत् तिर्यगायुः। येन कर्म-विपाकेन सुख-दुःखाकुलेषु मनुष्यभवेषु चिरमवस्थानं भवति देहिनां तन्मनुष्यायुः। येन पुण्यकर्म-विपाकेन शर्माकरासु देवगतिषु घनतरं कालं अवस्थानं धर्मिणां भवति तद् देवायुः। यथा श्रृंखलाबद्धपुमान् बंदीगृहात् गमनं कर्तुं न शक्नोति तथा आयुः श्रृंखलाबद्धोऽगीकाय बंदीगृहात् गत्यंतरं गंतुं न शक्नोति।

यद् दुष्कर्मवशेनात्मा नरकगतिं याति सा नरकगतिः।

जिन कर्म स्कंधों के उदय से ऊर्ध्व गमन स्वभाव वाले जीव का तीव्र शीत और उष्ण वेदना वालें नरकों में दीर्घ जीवन होता है, वह नरकायु है ।

जिस कर्म के उदय प्राणी का विविध वेदनाओं के स्थान स्वरूप तिर्यंच गति में अवस्थान होता है, वह तिर्यगायु है।

जिस कर्म के उदय से सुख और दुःखों से व्याप्त मनुष्य भव में दीर्घकाल तक अवस्थान होता है, वह मनुष्यायु है।

जिस कर्म के फलस्वरूप धर्मात्मा जीव का सुखकर देवगति में दीर्घकाल तक अवस्थान होता है, वह देवायु कर्म है।

जैसे श्रंखलावद्ध पुरुष वंदीगृह से जाने में समर्थ नहीं होता ठीक उसी प्रकार आयु कर्म से बंधा हुआ प्राणी दूसरी गति में जाने में समर्थ नहीं होता है।

जिस दुष्कर्म के फलस्वरूप जीव नरकगति में जाता है, वह नरकगति कर्म है।

यत् कर्मोदयेन पापी तिर्यग्गतिं व्रजति सा तिर्यग्गतिः।यद् कर्मविपाकेन देही मनुष्यगतिं गच्छति सा मनुष्यगतिः। यत् पुण्यकर्मोदयेन पुण्यवान् देवगतिं लभते सा देवगतिः। यदि गतिनामकर्म न स्यादगति जीवः स्यात्। यद् उदयादात्मा एकेन्द्रिय कथ्यते तदेकेन्द्रियजातिनाम। यत् वशात् संसारी क्रम्यादिजातिं प्राप्नोति द्वींद्रिय उच्यते तद् द्वीन्द्रियजातिनाम। यदाधीनो देही कुंथ्वादिभवं गतस्त्रीन्दिय निगद्यते तद् त्रीन्दियजातिनाम। यत् कर्म-विपाकेन दंशादि योनिं परिणतः संसारी चतुरिंद्रियो निरूप्यते तच्चतुरिंद्रियजातिनाम।

जिस कर्म के उदय से पापी जीव तिर्यंचगति में जाता है, वह तिर्यंचगति है।

जिस कर्म के उदय से प्राणी मनुष्य गति को जाता है, वह मनुष्य गति है।

जिस पुण्य कर्म के उदय से पुण्यवान जीव को देवगति की प्राप्ति होती है, वह देवगति नामकर्म है।

यदि गति नामकर्म न हो तो जीव के अन्य भव में जाना संभव न हो सकेगा ।

जिसके उदय से आत्मा एकेन्द्रिय कहा जाता है, वह एकेन्द्रिय जाति नामकर्म है।

जिस कर्म के वश सें जीव कृमि आदि जाति को प्राप्त द्वीन्द्रिय होता है, वह द्वीन्द्रिय जाति नामकर्म है।

जिस कर्म के आधीन प्राणी कुंथु आदि भव को प्राप्त हुआ त्रीन्द्रिय होता है, वह त्रीन्द्रिय जाति नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से दंशादि योनि को प्राप्त होता हुआ चतुरिन्द्रिय कहलाता है, वह चतुरिन्द्रिय नामकर्म है।

यत् कर्मोदयेन पंचेन्द्रियावस्थानं प्राप्तो जीवः पंचेन्द्रिय कथ्यते तत् पंचेन्द्रियजातिनाम। यदि जातिनाम कर्म न स्यात् तर्हि व्रीहयोः व्रीहिभिः वृश्चिका वृश्चिकैर्मत्कुणामत्कुणैश्च समाना न जायेरन्। दृश्यते ता जातयः प्रत्यक्षेण ततः आप्तवचनं प्रमाणं स्यात्। यद् उदयात् सप्तधातुमयस्यौदारिकशरीरस्य तिर्यग्मनुष्याणां निर्वृत्ति र्भवति तदौदारिक-शरीरनाम। यत् कर्मविपाकेन देवनारकाणामनेक-विक्रियाकरण-समर्थं वैक्रियिकशरीरं जायते तत् वैक्रियिकशरीरनाम। येन पुद्गल-स्कंधोदयेन शुभं सूक्ष्मं संशय-निर्नाशकं आहारकशरीरं मुनीनामुत्पद्यते तदाहारकशरीरनाम।येन कर्मणा शुभाशुभात्मकं

जिस कर्म के उदय से पंचेन्द्रियों में अवस्थान होता है, वह पंचेन्द्रिय जाति नामकर्म है।

यदि जाति नामकर्म न हो तो धान्य धान्य के साथ, विच्छु विच्छुओं के साथ, खटमल खटमलों के समान न होगें, किन्तु इन सबमें परस्पर सदृशता दिखाई देती है। इससे जाति नामकर्म का अस्तित्त्व सिद्ध होता है और आप्त के वचनों की निर्दोष सिद्धि होती है।

जिस कर्म के उदय से सप्तधातुमय औदारिक तिर्यंच और मनुष्यों के शरीर की रचना होती है, वह औदारिकशरीर नामकर्म है।

जिस कर्म के फलस्वरूप देव नारकियों के अनेक प्रकार की विक्रिया करने में समर्थ वैक्रियिक शरीर की उत्पत्ति होती है, वह वैक्रियिकशरीर नामकर्म है।

जिन पुद्गल स्कंधों के उदय से शुभ, सूक्ष्म एवं संशय नाशक मुनियों के आहारक शरीर की उत्पत्ति होती है, उसे आहारकशरीर कहते हैं।

जिस कर्म के उदय से साधुओं के शुभ अशुभ रूप शुभ अशुभ

शुभाशुभकरं तैजसशरीरं यतीनां भवति तत् तैजस शरीरनाम। यद् उद्यात् कर्ममयं कार्मणशरीरं देहिनां जायते तत् कार्मण-शरीरनाम। यदि शरीरनामकर्म न स्यादात्मा मुक्तः स्यात्। येन कर्मविपाकेन शिरःपृष्टोरोबाहूदलगलकपाणिपादाष्टांगानि ललाटनासिकाद्युपांगानि तदंतरभेदानि च भवंति तदौदारिक-वैक्रियिकाहारकांगोपांगनाम त्रिविधं। यद् उद्याद् चक्षुरादीनां स्व-स्व स्थानेषु प्रमाणान्वितताश्च चक्षुरादयो जायंते तन्निर्माणनाम। निर्माणनाम द्विविधं। प्रमाणनिर्माणं स्थाननिर्माणं चेति। यद्येतत्कर्म न स्यात्कर्णनासिकादीनां स्वजाति स्वरूपे-

---

तैजसशरीर की रचना होती है, वह तैजसशरीर नामकर्म है।

जिसके उदय से प्राणियों के कर्म रूप कार्मणशरीर की उत्पत्ति होती है, वह कार्मणशरीर नामकर्म है।

यदि शरीर नामकर्म न हो तो जीव के अशरीरता का प्रसंग हो जायेगा जबकि संसारी जीवों के शरीर दृष्टिगोचर होता ही है।

जिस कर्म के उदय से मस्तक, पीठ, हृदय, दो हाथ, नितम्ब (कमर के पीछे का भाग), दो पैर, दो हाथ, ये आठ अंग तथा ललाट, नाक आदि उपांग होते हैं वही आंगोपांग औदारिक, वैक्रियिक और आहारक के भेद से तीन प्रकार का है।

जिस नामकर्म के अनुसार चक्षु आदि स्व-स्व स्थानों में यथा योग्य प्रमाण निष्पन्न होते हैं, वह निर्माण नामकर्म है।

निर्माण नामकर्म दो प्रकार का है, प्रमाणनिर्माण एवं स्थान -निर्माण ।

यदि प्रमाण एवं स्थान निर्माण नामकर्म न हो तो कान,नासिका

णात्मनः स्थानेन प्रमाणेन च नियमो नास्ति। यत् शरीरनाम-कर्मोदयात् गृहीतपुद्गलानां शरीररूपेणान्योन्यसंश्लेषणंयतो भवति तत् बंधननाम। औदारिकादिभेदेन पंचविधं यदि बंधन नामकर्म न स्याद् वालुकापुरुषशरीरमिव शरीरं स्यात्। यदुया-दौदारिकादिशरीराणां विविररहितान्योन्यप्रवेशानुप्रवेशेनै-कत्वापादानं भवति तत् संघातनाम पंचविधं। औदारिकादिभेदेन यदि संघातनामकर्म न स्यात् तर्हि तिलमोदक इव जीवशरीरं स्यात्। येनोदयागतेन कर्मस्कंधेन गीर्वाणजिनेशशरीराणां (इव) शुभं समचतुरस्रसंस्थानं क्रियते तत् समचतुरस्रसंस्थाननामकर्म।

स्वस्थान तथा यथा योग्य प्रमाण में होने का अभाव हो जायेगा, जिससे अंग प्रत्यंग संकर और व्यतिकर स्वरूप हो जावेगें।

जिस कर्म के उदय से जीव के साथ पुद्गलों का अन्योन्य प्रदेश संश्लेष सम्बन्ध होता है, वह बंधन नामकर्म है । यह औदारिक आदि शरीर के भेदों से पांच प्रकार का है। यदि शरीर बंधन नामकर्म जीव के न हो तो बालुका द्वारा बनाये गये पुरुष (शरीर) के समान जीव का शरीर होगा, क्योंकि परमाणुओं का परस्पर में बंध नहीं होगा।

जिसके उदय से औदारिक आदि शरीरों में छिद्र रहित होकर परस्पर प्रदेशों के अनुप्रवेश द्वारा एकरूपता आती है वह संघातनामकर्म है।

यह संघात नामकर्म औदारिक आदि पंच शरीरों के भेद से पांच प्रकार का है।

यदि शरीरसंघात नामकर्म जीव के न हो तो तिल के मोदक के समान अपुष्ट शरीर वाला जीव हो जावे , किन्तु ऐसा है नहीं क्योंकि तिल के मोदक के समान संश्लेष रहित परमाणुओं वाला शरीर पाया नहीं जाता।

जिस कर्म के उदय से तीर्थंकर भगवान के समान शुभ शरीर

यत् कर्मवशात् न्यग्रोधपरि- मंडलाकारं नाभेरुर्द्धपरमाणुबहूपेतं अधो ह्रस्वं आयातवृत्तं शरीरस्य संस्थानं भवति तत् न्यग्रोध ापरिमंडलसस्थानं। येन कर्मोदयेन वाल्मीकाकारं शाल्मलिनिभं वा नाभेरधोऽवयव- विशालं ऊर्द्धसूक्ष्मं शरीरस्य संस्थानं भवति तत् स्वातिसंस्थानं। यद् वशात् सर्वांगोपांग ह्रस्वोपेतं शरीरस्य संस्थानं जायते तद् वामनसस्थानं। येन कर्मविपाकेन पृष्टप्रदेशे बहुपुद्गल- प्रचययुक्तं संस्थानं भवति तत् कुब्जकसंस्थानं। येन कर्मोदयेन नारकशरीराणां सर्वांगोपांग हुंडसंस्थितिकरं वीभत्सं संस्थानमुत्पद्यते तत् हुड़कसंस्थाननाम।

का संस्थान होता है, वह समचतुरस्र संस्थान नाम कर्म है।

न्यग्रोध (बट) वृक्ष के समान नाभि के ऊपर शरीर में स्थूलत्व और नीचे के भाग में लघु प्रदेशों की रचना होना न्यग्रोध परिमण्डल संस्थान है।

वल्मीक या शाल्मली वृक्ष के आकार के समान नाभि से नीचे विशाल और ऊपर सूक्ष्म या हीन जिस शरीर का आकार होता है, वह स्वातिशरीरसंस्थान है।

जिस कर्म के उदय से पीठ पर बहुत पुद्गलों का पिण्ड हो जाता है, वह कुब्जकसंस्थान नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से शरीर के सभी अंग उपांग छोटे होते हैं, उसे वामनसंस्थान कहते हैं।

जिस कर्म के उदय से सभी अंग और उपांग अनिश्चित आकार हुण्ड के समान एवं विषम (असुहावने) आकार वाले होते हैं, वह हुड़क संस्थान है।

यदि शरीरसंस्थानं न स्यात् जीवशरीरमसंस्थानं स्यात्। येन शुभ पुद्गलोदयेन वज्रास्थिमयंवज्रवलयवेष्टितं वज्रनाराचकीलितं अत्यंतदृढं शरीरस्य संहननं भवति तत् वज्रर्षभनाराचसंहनन। येन कर्म विपाकेन वज्रास्थिमयं वज्रनाराचकीलितं शरीरस्य संस्थानं जायते तत् वज्रनाराचसंहननं। यत् कर्मवशादस्थि संधि बंध नाराचकीलितं संहननं भवति तत् नाराचसंहननं। यस्य कर्मोदयेन नाराचेनार्द्धकीलितास्थिसंचयमयं संहननं जायते तदर्द्धनाराचसंहननं। येन कर्मणा उभयास्थिप्रांते कीलितं संहननं भवति तत् कीलिका संहननं। यत् दुष्कर्मवशादंतरप्राप्त परस्परास्थिसंधिबहिः शिरास्नायुमांसघटितं संहननं भवति

यदि शरीरसंस्थान नामकर्म स्वीकार नहीं किया जाय तो शरीर संस्थान नामकर्म के अभाव में जीव का शरीर आकृति रहित हो जायेगा।

जिस कर्म के उदय से वज्रमय हड्डियाँ वज्रमय वेष्टन से वेष्टित और वज्रमय नाराच से कीलित होती हैं, वह वज्रऋषभ –नाराचशरीरसहंनन है।

जिस कर्म के उदय से नाराच से कीलित हड्डियों की संधियाँ होती है, वह नाराचशरीरसंहनन नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से अस्थिबंध अर्ध कीलित होता है, उसे अर्धनाराचसंहनन कहते हैं

जिस कर्म के उदय से वज्ररहित हड्डियाँ और कीलें होती है, वह कीलक शरीर सहनन नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से भीतर हड्डियों का परस्पर बन्ध न हो मात्र बाहर से वे सिरा स्नायु मांस आदि लपेट कर संघटित की गयी

तदसंप्राप्तासृपाटिकासंहननं। यद्येतत् संहननं नामकर्म न स्यात् शरीरमसंहननं भवेत्। येन कर्मणा गंडकादिकायपुदगलानां कर्कशभावो भवति तत् कर्कश नाम। यद्वशान्मयूरपिच्छादिषु (इव) मृदुत्वं जायते तत् मृदुनाम। येन कर्मोदयेन लोहादौ (इव) गुरुत्वं भवति तद् गुरुनाम। यस्य कर्मोदयेनार्कतूलादीनां (इव) लघुत्वं जायते तल्लघुनाम। यद् कर्मवशात् तिलादौ (इव) स्निग्धता भवति तत् स्निग्धनाम। येन कर्मणा बालुकादौ (इव) रूक्षता उत्पद्यते तत् रूक्षनाम। येन कर्मणा जलादौ (इव) शीतत्वं भवति तद्शीतनाम।

हों, वह असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन है ।

संहनन नामकर्म के अभाव में शरीर संहनन रहित हो जायेगा।

जिस कर्म के उदय से शरीर में गंडकादि रूप कठोरता होती है, वह कर्कश नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से मयूर पीछी आदि के समान शरीर में मृदुता होती है, वह मृदु नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से शरीर संबंधी पुद्गलों में गुरुता होती है, वह गुरु नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से शरीर संबंधी पुद्गलों में रूई के समान लघुता होती है, वह लघु नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से शरीर में तिलों की स्निग्धता के समान स्निग्धता होती है, वह स्निग्ध नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से प्राणीयों के शरीर में बालू के समान रूक्षता उत्पन्न होती है, वह रूक्ष नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से जलादि के समान शरीर मे शीतलता होती है, वह शीतनामकर्म है।

यत् कर्मवशात् अग्निकायादौ (इव) उष्णत्वं स्यात् तत् उष्णनाम। नैतेषामभावः सर्वत्र कर्कशमृदुत्वादि दर्शनात्। यस्य कर्मणा उदयेन श्रृंगवेरादिषु (इव) शरीरपुद्गलास्तिक्तस्वरूपेण परिणमंति तत् तिक्तनाम। यत् वशान्निबादौ (इव) शरीरपुद्गलाः कटुकभावेन परिणमंति तत् कटुकनाम। यद् विपाकेन वभीतक फलादौ निभं कषायभावेन पुद्गला एकीभावं व्रजंति तत् कषायनाम। यस्य कर्मोदयेन शरीरपुद्गला आम्लस्वरूपेन चिंचा वृक्षादौ (निभं) तन्मयत्वं यांति तदाम्लनाम। येन कर्मणा काययोग्यपुद्गलाः इक्ष्वादिषु (इव) मधुररूपेण परिणमंति तन्मधुर –नाम। न तेषामभावो निंबादीनां प्रतिनियत रसोपलंभात्।

जिस कर्म के उदय से अग्निकाय आदि के समान उष्णता होती है, वह उष्ण नामकर्म है।

कर्कशादि का अभाव नहीं है क्योंकि सर्वत्र कर्कशमृदुत्व आदि के दर्शन होते हैं।

जिस कर्म के उदय से श्रृंगवेर आदि के समान शरीर के पुद्गल स्कंध तिक्त रूप परिणत होते हैं, वह तिक्त नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से निंब आदि के समान शरीर के पुद्गल स्कंध कटुक परिणत होते हैं, वह कटुक नामकर्म है।

जिस कर्म के फलस्वरूप आँवलो के फल के समान शरीर के स्कंध कषायले रूप होते हैं, वह कषाय नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से शरीर के स्कंध चिंचा वृक्ष के समान आम्ल रूप से परिणत होते हैं, वह आम्ल नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से शरीर के स्कंध गन्ने आदि के समान मधुरता को प्राप्त होते हैं, वह मधुर नामकर्म है।

रसकर्म का अभाव नहीं है,क्योंकि निंबादि में प्रतिनियत रस देखा जाता है।

यस्य कर्मस्कंधस्योदयेन शरीरपुद्गलाः सुगंधा भवंति तत् सुगंधनाम। येन कर्मविपाकेन शरीरपुद्गला दुर्गंधा भवंति तत् दुर्गंधनाम। नेतयोरभावः। हस्त्यादिजातिषु प्रतिनियतगंधोपलंभात्। यस्य कर्मणा उदयेन शरीरपुद्गलानां कृष्णता भवति तत् कृष्णनाम। यत् कर्मवशात् कायपुद्गलानां नीलत्वं भवति तत् नीलनाम। येन कर्मविपाकेन शरीरपुदगलानां रक्तता जायते तत् रक्तवर्णनाम। येन कर्मोदयेन देहाणुस्कंधानां पीतत्वमुत्पद्यते तत् पीतवर्णनाम। येन कर्मविपाकेन शरीरपुद्लानां शुक्लता भवति तत् शुक्लनाम।

जिस कर्म के उदय से शरीर संबंधी पुद्गल सुगन्धित होते हैं, वह सुगंध नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से शरीर संबंधी पुद्गल दुर्गंधित होते है, वह दुर्गंध नामकर्म है।

गंध नामकर्म का अभाव नहीं है क्योंकि हाथी आदि में नियत गंध पाई जाती है।

जिस कर्म के उदय से शरीर संबंधी पुद्गलों का कृष्ण वर्ण होता हैं, वह कृष्ण नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से शरीर संबंधी पुद्गलों का नील वर्ण होता हैं, वह नील नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से शरीर संबंधी पुद्गलों का रक्त वर्ण होता हैं, वह रक्त नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से शरीर संबंधी पुद्गलों का पीत वर्ण होता हैं, वह पीत नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से शरीर संबंधी पुद्गलों का शुक्ल वर्ण होता हैं, वह शुक्ल नामकर्म है।

एतेषामभावेऽप्यवर्णं शरीरं स्यात्। पूर्वोत्तरशरीरयोरंतराले एकद्वित्रिसमयेषु वर्तमानस्य नरकगतिं गतस्य जीवस्य यस्य कर्मस्कंधस्योदयेन नरकगति- प्रायोग्यंसंस्थानं भवति तत् नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यं। येन कर्मविपाकेन तिर्यग्गतिं गतस्य जीवस्य विग्रहगतौ वर्त्तमानस्य तिर्यग्गतिप्रायोग्यं संस्थानं जायते तत् तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्यं। येन कर्म विपाकेन मनुष्यगतिं गतस्य देहिनो मनुष्यगतिं प्रायोग्यं संस्थानं स्यात् तत् मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यं। यस्य कर्मण उदयेन देवगतिं गतस्य प्राणिनो देवगतिप्रायोग्यं संस्थानमुत्पद्यते तत् देवगति प्रायोग्यानुपूर्व्य नाम।

इन कर्मों के अभाव में अनियत वर्णादि वाला शरीर हो जायेगा, किन्तु ऐसा देखा नहीं जाता।

पूर्व और उत्तर शरीरों के अतंराल वर्ती एक, दो और तीन समय में जिस कर्म के उदय से नरक गति को जाने वाले जीव के नरक गति के योग्य संस्थान होता है, वह नरकगति प्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से तिर्यंचगति को गये हुये और विग्रहगति में वर्तमान जीव के तिर्यंचगति के योग्य संस्थान होता है, वह तिर्यंचगति प्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से मनुष्यगति को गये हुये और विग्रहगति में वर्तमान जीव के मनुष्यगति के योग्य संस्थान होता है, वह मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से देवगति को गये हुये और विग्रहगति में वर्तमान जीव के देवगति के योग्य संस्थान होता है, वह देवगति प्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म है।

नास्याभावः विग्रहगतौ जातिप्रतिनियत- संस्थानोपलंभात्। यस्य कर्मस्कंधस्य विपाकेन जीवोऽयः पिंडवन्नाधोपतति नार्कतूलवत् लघुत्वात् ऊर्ध्वं व्रजति तदगुरु- लघुनाम। यद् वशादंगीबंधनोच्छ्वासनिरोधाग्निप्रवेशपतनाद्यैः स्वयंमात्मानं हंति तदुपघातनाम अथवा यत् कर्मजीवस्य स्वपीडाहेतूनवयवान् महाश्रृंगलंबस्तनोदरादीन् करोति तदुपघातनाम। यद् विपाकेन परघातहेतवः शरीरपुद्गलाः सर्पदंष्ट्रावृश्चिकपुच्छादिभवः पर- शस्त्राद्याघात वा भवन्ति तत् परघातनाम।

यदि आनुपूर्वी नामकर्म न हो तो विग्रहगति के काल में जीव अनियत संस्थान वाला हो जायेगा, किन्तु ऐसा है नहीं क्योंकि जाति प्रतिनियत संस्थान विग्रह गति में पाया जाता है।

जिसके उदय से शरीर लोहे के पिण्ड के समान गुरु होने से जीव का शरीर न तो नीचे गिरता है और न अर्कतूल के समान लघु होने से ऊपर जाता है, वह अगुरुलघु नामकर्म है।

जिन कर्म स्कंधों के उदय से जीव अपने द्वारा किये गये बन्धन श्वास, निरोध, अग्नि प्रवेश आदि के निमित्त से स्वयं का घात करता है, वह उपधात नामकर्म है अथवा जिस कर्म के उदय से शरीर में स्वपीड़ा के कारणभूत अवयव उत्पन्न होते हैं, वह उपघात नामकर्म हैं जैसे महाशृंग (बारह सिंगा) के समान बड़े सींग, विशाल तोंद आदि।

जिस कर्म के उदय से शरीर में पर को घात करने वाले पुद्गल निष्पन्न होते हैं, वह परघात नामकर्म है, जैसे साँप की दाढ़ों में विष, विच्छू की पूंछ में पर दुःख के कारणभूत पुद्गलो का संचय आदि।

यत् वशात्प्राणिशरीरेआतापो भवति तदातपनाम। नास्या-भावः सूर्यमंडलपृथ्वी कायादिंषु दर्शनात्। येन कर्मविपाकेनांगिदेहे उद्योतोजायते तदुद्योतनाम। नास्याभावः चंद्रनक्षत्रखद्योतपृथ्वी-कायादिष्वुपलंभात्। येन कर्मोदयेन जीव उच्छ्वासनिः श्वासो-त्पादनसमर्थः स्यात् तत् उच्छ्वासनाम। यदुदयेन सिंहकुंजर-वृषभादीनामिव खेविद्याधरदेवादीनां प्रशस्तागति र्भवति तत् प्रशस्त-विहायोगतिनाम। यद् दुष्कर्मवशात् रवेउष्ट्रश्रृंगालादीनामिव मक्षि-कापक्ष्यादीनामप्रशस्तगति र्भवति तदप्रशस्तविहायोगतिनाम।

जिस कर्म के उदय से जीव के शरीर में आतप होता है, वह आतप नामकर्म है, उष्णता सहित प्रकाश को आतप कहते हैं।

यदि आतप नामकर्म न हो तो पृथिवीकायिक जीवों के शरीर रूप सूर्य मण्डल में आतप का अभाव हो जाय, किन्तु ऐसा है नहीं क्योंकि वैसा पाया नहीं जाता ।

जिस कर्म के उदय से जीव के शरीर में उद्योत उत्पन्न होता है, वह उद्योत नामकर्म है।

उद्योत नामकर्म है, क्योंकि चन्द्र, नक्षत्र, तारा और खद्योत (जुगनू) आदि के शरीरों में उद्योत पाया जाता है।

जिस कर्म के उदय से जीव उच्छ्वास और निःश्वास रूप कार्य के उत्पादन में समर्थ होता है उसे उच्छ्वास नामकर्म कहते हैं।

जिस कर्म के उदय से सिंह, कुंजर, वृषभ, विद्याधर और देव आदि के समान गमन करने रूप प्रशस्तगति होती है, वह प्रशस्त विहायोगति है।

जिस कर्म के उदय से ऊंट, सियाल आदि के समान तथा मक्खी, पक्षी आदि के समान अप्रशस्तअमनोज्ञ गमन होता है, वह अप्रशस्त विहायोगति है।

नास्याभाव स्वल्पशरीरिणां पक्षिणामप्याकाशगमनदर्शनात्। शरीरनामकर्मोदयेन निष्पाद्यमानं शरीरमेकात्मोपभोग- कारणं यतो भवति तत् प्रत्येक शरीरनाम। येन कर्मोदयेन बहवात्मोपभोगनिमित्तं शरीरं स्यात् तत् साधारणशरीरनाम। यद् वशात् देहिनां त्रसत्वं भवति तत् त्रसनाम। अन्यथा द्वीन्द्रियाणाममावः स्यात्। येन दुष्कर्मोदये- नांगी स्थावरेषूत्पद्यते तत् स्थावरनाम। अन्यथा स्थावराणामभावः स्यात्। यदु- दयात् स्त्रीपुरुषयोरन्योन्यप्रभवं सौमाग्यं जायते तत् सुभगनाम।

विहायोगति नामकर्म है, क्योंकि तिर्यंच, मनुष्य तथा पक्षियों का आकाश में गमन पाया जाता है।

शरीर नामकर्म के उदय से रचा जाने वाला जो शरीर जिसके निमित्त से एक आत्मा के उपभोग का कारण होता है, वह प्रत्येक शरीर नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से बहुत आत्माओं के उपभोग का हेतु रूप साधारणशरीर होता है, वह साधारण शरीर नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से जीवों के त्रसपना होता है, वह त्रस नामकर्म है।

त्रस नामकर्म है, क्योंकि अन्यथा द्वीन्द्रिय आदि जीवों का अभाव हो जायेगा।

जिस दुष्कर्म के उदय से स्थावर (एकेन्द्रिय) जीवों में उत्पत्ति होती है, वह स्थावर नामकर्म है।

स्थावर नामकर्म है, अन्यथा स्थावर जीवों का अभाव हो जायेगा।

जिस कर्म के उदय से स्त्री और पुरुषों में सौभाग्य अर्थात् रूपादि गुणों के होने पर प्रीतिकर अवस्था उत्पन्न होती है, वह सुभग नामकर्म है।

यत् वशात् स्त्रीपुंसयोः सुरूपादिगुणे सत्यपि अप्रीतिकरं दौर्भाग्यं भवति तद् दुर्भगनाम। यत् शुभकर्मवशात् देहिनामन्योन्यो मधुरः सुस्वरः जायते तत् सुस्वरनाम। येन दुष्कर्मणा प्राणिनां कटुकः परपीडाकरो दुःस्वर उत्पद्यते तत् दुःस्वरनाम। यच्छुभोदयादंगोपांगानां रमणीयत्वं भवति तच्छुभनाम। यद्वशादंगोपांगानां विरूपकत्वं भवति तद् अशुभनाम। यत् वशादन्यबाधाकरेषु शरीरेषु जीव उत्पद्यते तद् बादरनाम। येन दुष्कर्मोदयेनांगी सूक्ष्मकायेषु जायते तत् सूक्ष्मनाम।

जिस कर्म के उदय से स्त्री और पुरुषों में रूपादि गुणों के होने पर भी अप्रीतिकर अवस्था होती है, वह दुर्भग नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से प्राणियों के दूसरों को मधुर लगने वाला स्वर उत्पन्न होता है, वह सुस्वर नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से प्राणियों के कटुक दूसरों को दुःख करने वाला स्वर उत्पन्न होता है, वह दुःस्वर नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से आंगोपांगनाम कर्मोदय जनित अंगों और उपांगों के शुभपना (रमणीयत्व) होता है, वह शुभ नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से अंग और उपांगों में अशुभपना उत्पन्न होता है, वह अशुभ नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से जीव दूसरों को बाधा दिये जाने योग्य स्थूल शरीर में उत्पन्न होता है, वह बादर नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से प्राणी सूक्ष्म शरीर में उत्पन्न होता है, वह सूक्ष्म नामकर्म है।

यत् वशादाहारादिषट्पर्याप्तिनिष्पत्ति जीवस्य जायते तत् पर्याप्ति –नाम। यत् वशात् पर्याप्तयितुमात्मा असमर्थो भवति तदप–र्याप्तिनाम। यस्य शुभकर्मणो विपाकेन दुष्करोपवासादि –तपःकरणेऽपि अंगोपांगानां स्थिरत्वं भवति तत् स्थिरनाम। यद् वशात् उपवासादिकरणे स्वल्पशीतोष्णादि अंगोपांगानि कृशी भवन्ति तदस्थिरनाम। येन शुभकर्मोदयेनादेयत्वं प्रभोपेतं शरीरं भवति तदादेयनाम। यद् वशादनादेयं निःप्रभवशरीरं भवति तत् अनादेयनाम। यत् कर्मविपाकात् सद्भूतानां वासदभूतानां गुणानां लोकेख्यापनं जायते तद्यशःकीर्तिनाम।

जिस कर्म के उदय से आहार आदि षट् पर्याप्तियों की रचना होती है, वह पर्याप्ति नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से जीव पर्याप्तियों के पूर्ण करने के लिए समर्थ नहीं होता है, वह अपर्याप्त नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से दुष्कर उपवास आदि तप करने से भी अंग उपांग आदि स्थिर बने रहते हैं कृश नहीं होते, वह स्थिर नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से अल्प उपवास आदि करने पर अथवा अल्पशीत या उष्ण के संबंध से अंगोपांग कृश हो जाते हैं, वह अस्थिर नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से प्रभा युक्त शरीर होता है, वह आदेय नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से निष्प्रभ शरीर उत्पन्न होता है, वह अनादेय नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से विद्यमान या अविद्यमान गुणों का उद्भावन लोगों के द्वारा किया जाता है, वह यशः कीर्ति नामकर्म है।

यदुदयात् भूतानामभूतानां च दोषाणां ख्यापनं लोके भवति तद- यशःकीर्तिनाम। येनात्यंतशुभोदयेन लोकत्रयचमत्कार-क्षोभकारकं पंचकल्याणपूजायोग्यमार्हत्वं सद्दृष्टे र्भवति तत् सर्वोत्कृष्टं तीर्थंकरत्वनाम। यथा चित्रकारो हस्त्यश्वदेव-नारकचित्राणि नानारूपाणि करोति तथा नामकर्म देवमनुष्य-नारककीटतरुवृश्चिकादि नानारूपान्विधत्ते।

यत् शुभकर्मोदयात् लोकपूजितेषूत्तमकुलेषु जन्म प्राप्यते तद् उच्चैर्गोत्रं। यत् वशात् लोकगर्हितेषु कुलेषु जन्म स्यात् तत् नीचैर्गोत्रं। यथा कुंभकारो लघुवृहद्भाजनानि करुते तथा गोत्रकर्म उत्तमनिंद्यकुलानि जनयति।

जिस कर्म के उदय से विद्यमान या अविद्यमान अवगुणों का उद्भावन लोक द्वारा किया जाता है, वह अयशः कीर्ति नामकर्म है।

जिस शुभ नामकर्म के उदय से तीन लोक में चमत्कार, क्षोभ उत्पन्न करने वाली, पंचकल्याणक पूजा योग्य आर्हन्त्य पद की प्राप्ति होती है, वह सर्वोत्कृष्ट तीर्थंकर नामकर्म है।

जैसे चित्रकार हाथी, घोड़ा, देव और नारकी के नाना रूप वाले चित्रों को बनाता है उसी प्रकार नामकर्म देव, मनुष्य, नारकी, कीट, वृक्ष, बिच्छू आदि नाना रूपों की रचना करता है।

जिसके उदय से लोकपूजित उत्तम कुलों में जन्म होता है, वह उच्चगोत्र है।

जिसके उदय से लोकगर्हित (निंद्य) कुलों में जन्म होता है, वह नीचगोत्र है।

जैसे कुंभकार छोटे बड़े बर्तन बनाता है, उसी प्रकार गोत्रकर्म उत्तम, निंद्य कुलों में उत्पन्न कराता है।

यद् वशात् दातुंकामोऽपि न प्रयच्छति स दानांतरायः। यदुदयात् लब्धकामोऽपि न लभते स लाभांतरायः। यद् विपाकात् भोक्तुमिच्छन्नपि न भुंक्ते स भोगांतरायः। यद् वशात् उपभोगक्तुमभिवांच्छन्नपि नोपभुंक्ते स उपभोगांतरायः। येन कर्मोदयेनोत्सहितुकामोऽपि नोत्सहते स वीर्यांतरायः। यथा राज्ञो भंडागारिको दानादीनां विघ्नं करोति तथांतरायः कर्मजीवस्य दानलाभभोगोपभोगवीर्याणां विघ्नं विदधाति। इमाः सर्वा अष्टचत्वारिंशदधिकशतप्रमाणाः कर्मणामुत्तरप्रकृतयः पृथक् पृथक् स्वभावा विज्ञेयाः।

जिस कर्म के उदय से देने की इच्छा करता हुआ भी नहीं देता, वह दानांतरायकर्म है।

जिसके उदय से प्राप्त करने की इच्छा करना हुआ भी प्राप्त नहीं कर पाता है, वह लाभांतराय कर्म है।

जिस कर्म के उदय से भोगने की इच्छा करता हुआ भी नहीं भोग सकता, वह भोगांतराय कर्म है।

जिस कर्म के उदय से उपभोग की इच्छा करता हुआ भी उपभोग नहीं, कर सकता वह उपभोगांतराय कर्म है।

जिस कर्म के उदय से उत्साहित होने की इच्छा रखता हुआ भी उत्साहित नहीं होता वह वीर्यांतराय कर्म है।

यथा राजा का भण्डारी दानादि में विघ्न डालता है, उसी प्रकार अंतराय कर्म जीव को दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य आदि में विघ्न डालता है। ये सब पृथक् पृथक् स्वभाव वाली कर्म की 148 उत्तर प्रकृतियां जानना चाहिए।

इदानीं पुण्यप्रकृतीनां भेदं निरूपयामि। सातावेदनीयं देवायुः मनुष्यायुः तिर्यगायुः मनुष्यगतिः देवगतिः पंचेन्द्रियजाति पंचशरीराणि त्रीण्यंगोपांगानि निर्माणं समचतुरस्रसंस्थानं वज्रर्षभनाराचसंहननं प्रशस्तस्पर्शः प्रशस्तरसः प्रशस्तगंधः प्रशस्त –वर्णः मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यं देवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यं अगुरु–लघुः परघातः आतपः उद्योतः उच्छ्वासः प्रशस्तविहायोगतिः प्रत्येकशरीरः त्रसः सुभगः सुस्वरः शुभः वादरः पर्याप्तिः स्थिरः आदेयः यशःकीर्तिः तीर्थकरत्वं उच्चैः गोत्रं एताः पुण्यप्रकृतयो जीवानां सुखजन्यो द्विचत्वारिंशत् –प्रमाणाःभवंति।

अब पुण्य प्रकृतियों के भेदों का निरूपण करते हैं। साता वेदनीय, देवायु, मनुष्यायु, तिर्यंचायु, मनुष्यगति, देवगति, पंचेन्द्रियजाति, पांच शरीर, तीन अंगोपांग, निर्माण, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रवृषभनाराच संहनन, प्रशस्त स्पर्श, प्रशस्तरस, प्रशस्तगंध, प्रशस्त वर्ण, मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्वी, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, प्रत्येक शरीर, त्रस, सुभग, सुस्वर, शुभ, बादर, पर्याप्त, स्थिर, आदेय, यशः कीर्ति, तीर्थंकर एवं उच्चगोत्र ये जीवों को सुख उत्पन्न करने वाली 42 पुण्य प्रकृतियां हैं।

विशेषार्थ– भेद विवक्षा से तो 68 पुण्यप्रकृतियाँ होती हैं। और अभेद विवक्षा से 42 प्रकृतियाँ है सो इसका अभिप्राय यह है कि पाँच बन्धन और पाँच संघात पाँच शरीरों के अविनाभावी हैं। अतः उनको पृथक् नहीं गिनने से 10 प्रकृतियाँ ये एवं वर्णादि की 20 में से सामान्य से वर्ण चतुष्क कहने पर 16 प्रकृतियाँ वे कम हो गई। इस प्रकार इन 26 प्रकृतियों को कम कर देने पर अभेद विवक्षा से 42 ही प्रकृतियाँ रहती हैं एवं भेद विवक्षा से इन 26 का भी कथन होने से 68 प्रकृतियाँ हो जाती हैं।

पंचज्ञानावरणानि नवदर्शनावरणानि षोडशकषायाः नव– नोकषायाः मिथ्यात्वं पंचांतरायाः नरकगतिः तिर्यग्गतिः चतस्रोजातयः पंचसंस्थानानि पंचसंहननानि अप्रशस्तस्पर्शः अप्रशस्तरसः अप्रशस्तगंधः अप्रशस्तवर्णः नरकगति–प्रायोग्यानुपूर्व्यं तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्यं उपघातः अप्रशस्त –विहायोगतिः साधारणशरीरः स्थावरः दुर्भगः दुस्वरः अशुभः सूक्ष्मः अपर्याप्तिः अस्थिरः अनादेयः अयशःकीर्ति असाता –वेदनीयं नीचैर्गोत्रं नारकायुः एता द्वयशीति पापप्रकृतयः प्राणिनां दुःखमातरो ज्ञातव्याः।

पांच ज्ञानावरण, नवदर्शनावरण, सोलह कषाय, नव नोकषाय, मिथ्यात्व, पांच अंतराय, नरकगति, तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय आदि चार जातियाँ, न्यग्रोधपरिमण्डलादि पांच संस्थान, वज्रनाराचादि पांच संहनन, अप्रशस्त स्पर्श, अप्रशस्त रस, अप्रशस्त गंध, अप्रशस्तवर्ण, नरकगति –प्रायोग्यानुपूर्वी, तिर्यंचगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्तविहायोगति, साधारणशरीर, स्थावर, दुर्भग, दुस्वर, अशुभ, सूक्ष्म, अपर्याप्त, अस्थिर, अनादेय, अयशः कीर्ति, असातावेदनीय, नीचगोत्र एवं नरकायु ये जीवों को दुख उत्पन्न करने वाली 82 पाप प्रकृतियां जानना चाहिए। **विशेषार्थ**– यहाँ अप्रशस्त प्रकृतियों में घातिया कर्मों की प्रकृतियां कही गई हैं सो घातिया कर्म तो अप्रशस्त रूप ही हैं। उनकी 47 प्रकृतियां– ज्ञानावरण 5, दर्शनावरण 9, मोहनीय 28 और अंतराय की 5 हैं तथा नीचगोत्र, असाता वेदनीय, नरकायु, नरकगति, नरकगति–प्रायोग्यानुपूर्वी, तिर्यंचगति, तिर्यंचगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, एकेन्द्रियादि चार जाति, समचतुरस्र संस्थान बिना न्यग्रोधपरिमण्डलादि पाँच संस्थान, वज्रर्षभनाराच बिना वज्रनाराचादि पाँच संहनन, अशुभवर्ण–

यथा सर्वेषां वस्तूनां मध्ये अमृतसमानं मधुरं सुखकारकं अन्यं न किंचित् भवति। हलाहलनिभं प्राणहरमपरं किंचिन्नास्ति तथा सर्वेषां प्रकृतिनां मध्ये त्रिभुवनैश्वर्यजननी सर्व-दुखांतकारिणी कृत्स्नप्राणिहितंकरा तीर्थकरत्वप्रकृति -समाना परा श्रेष्टा प्रकृतिः कलात्रयेऽपि न स्यात्। सर्व दुःखाकरीभूता अनंतसंसारकारिणी निकोतसप्तमनरकपर्यंतदुखःदायिनी मिथ्यात्वप्रकृतिसमा अन्या अशुभा प्रकृति नास्ति।

गंध–रस–स्पर्श, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, साधारणशरीर, दुर्भग, दुस्वर, अशुभ, सूक्ष्म, अपर्याप्त, अस्थिर, अनादेय, अयशःकीर्ति इस प्रकार वर्णादि की 16 कम करने से उदयापेक्षा 84 प्रकृतियाँ तथा घातिया कर्म की 47 में से सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति कम कर देने से बंधापेक्षा 82 प्रकृतियाँ अप्रशस्त रूप कही हैं। भेद विवक्षा से वर्णादि की 16 मिलाने पर बंधापेक्षा 98 एवं उदयापेक्षा सम्यग्मिथ्यात्व व सम्यक्त्व प्रकृति मिलने से 100 प्रकृतियाँ पापरूप (अप्रशस्त) कही हैं।

जैसे सभी वस्तुओं में अमृत के समान मधुर सुखकारक अन्य कुछ नहीं होता तथा हलाहल विष के समान प्राणों के हरण करने वाला कुछ भी नहीं है, उसी प्रकार तीनों कालों में अर्थात् भूत, भविष्यत और वर्तमान काल में सभी कर्मप्रकृतियां में तीनों लोकों के ऐश्वर्य उत्पन्न करने वाली, सभी दुखों का अंत करने वाली, सभी प्राणियों का हित करने वाली तीर्थंकर प्रकृति के समान दूसरी कोई श्रेष्ठ प्रकृति नहीं हैं तथा दुख को देने वाली, अनंत संसार को करने वाली निगोद और सप्तम नरक पर्यंत दुख को देने वाली मिथ्यात्व प्रकृति के समान कोई अशुभ प्रकृति नहीं है।

प्रकृतिबंधः

अथ बंधकाबंधकप्रकृतीनां विवरणं करोमि। पंच-ज्ञानावरणानि नवदर्शनावरणानि द्विधावेदनीयं षोडशकषायाः नवनोकषायाः मिथ्यात्वं चतुरायूंषि चतुर्गतयः पंचजातयः पंचशरीराणि त्रीण्यंगोपांगानि निर्माणं षट्संस्थानानि षट्संहननानि स्पर्शः रसः गंधः वर्णः चतुरानुपूर्व्याणि अगुरुलघुः उपघातः परघातः आतपः उद्योतः उच्छ्वासः द्विधाविहायोगतिः प्रत्येकशरीरः साधारणशरीरः त्रसः स्थावरः सुभगः दुर्भगः सुस्वरः दुःस्वरः शुभः अशुभः सूक्ष्मः बादरः पर्याप्तिः अपर्याप्तिः स्थिरः अस्थिरः आदेयः अनादेयः यशःकीर्तिः अयशः कीर्तिः तीर्थंकरत्वं द्विधा गोत्रं पचांतरायाः एता विंशत्यधिकशतप्रमाबंधप्रकृतयो मंतव्याः।

अब बंध और अबंध योग्य प्रकृतियों का निरूपण करता हूँ।

पांच ज्ञानावरण, नव दर्शनावरण, दो वेदनीय, सोलह कषाय, नव नोकषाय, मिथ्यात्व, चार आयु, चार गतियां, पांच जातियां, पांच शरीर, तीन आंगोपांग, निर्माण, छह संस्थान, छह संहनन, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, चार आनुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास, दो विहायोगति, प्रत्येक शरीर, साधारण शरीर, त्रस, स्थावर, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुस्वर, शुभ, अशुभ, सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त, अपर्याप्त, स्थिर, अस्थिर, आदेय, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशः कीर्ति, तीर्थंकर, दो गोत्र एवं पांच अंतराय ये एक सौ बीस बंध योग्य प्रकृतियां हैं।

सम्यक्त्व प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति, पांच शरीर बंधन, पांच शरीर संघात, सात स्पर्श, चार रस, एक गंध, चार वर्ण ये 28 अबंध प्रकृतियां हैं।

सम्यक्त्वं सम्यग्मिथ्यात्वं पंचशरीरबंधनानि पंचशरीर-संघातानि सप्तस्पर्शाः चतुरसाः गंधः चतुर्वर्णाः इमा अष्टा-विंशत्यबंधप्रकृतयो भवंति।

मिथ्यात्वगुणस्थाने आहारकशरीरं आहारकांगोपांगं तीर्थकरत्वमिति प्रकृतित्रयं मुक्त्वा शेषाः सप्तदशाधिकशत-संख्याः प्रकृति र्मिथ्यादृष्टिर्बध्नाति।

पंचज्ञानावरणानि नवदर्शनावरणानि द्विधावेदनीयं षोडशकषायाः हास्यादिषट्कं स्त्रीवेदः पुंवेदः नपुंसकवेदः तिर्यग्गायुः मनुष्यायुः देवायुः मनुष्यगतिः देवगतिः पंचेन्द्रियजातिः औदारिकशरीरः वैक्रियिकशरीरः तैजसः

विशेषार्थ-- पाँच ज्ञानावरण, नव दर्शनावरण, दो वेदनीय, 26 मोहनीय क्योंकि सम्यक्त्व और मिश्र प्रकृति का बंध नहीं होता उदय व सत्त्व ही होता है। 4 आयु, 67 नामकर्म की, क्योंकि 5 बंधन और 5 संघात का 5 शरीरों में अंतर्भाव होता है तथा वर्णादि की 16 प्रकृतियों का वर्ण चतुष्क में अंतर्भाव होने से इन 26 प्रकृतियों को बन्ध में पृथक् नहीं गिना है। गोत्र की 2 और अंतराय की 5 इस प्रकार 120 प्रकृतियाँ बन्ध योग्य कही गई हैं शेष 28 अबंधयोग्य कही गई हैं।

मिथ्यात्व गुणस्थान में आहारक शरीर, आहारक शरीर आंगोपांग, और तीर्थंकर इन तीन प्रकृतियों को छोड़ कर शेष 117 प्रकृतियों का मिथ्यादृष्टि बंध करता है।

पांच ज्ञानावरण, नव दर्शनावरण, दो वेदनीय, सोलह कषाय, हास्यादि छह नो कषाय, स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुंसक वेद, तिर्यचायु, मनुष्यायु, देवायु , मनुष्यगति, देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, वैक्रियक

कार्मणः औदारिकांगोपांगः वैक्रियिकांगोपांगः निर्माणं समचतुरस्रन्यग्रोधपरिमंडलस्वातिवामनकुब्जकसंस्थानानि। वज्रर्षभनाराचः वज्रनाराचः नाराचः अर्द्धनाराचः कीलिक-संहननं। स्पर्शः रसः गंधः वर्णः। तिर्यग्मनुष्यदेवगतिप्रायोग्या-नुपूर्व्याणि। अगुरुलघुः उपघातः परघातः उद्योतः उच्छ्वासः द्विधाविहायोगतिः प्रत्येकशरीरः त्रसः सुभगः दुर्भगः सुस्वरः दुस्वरः शुभः अशुभः बादरः पर्याप्तिः स्थिरः अस्थिरः आदेयः अनादेयः यशःकीर्ति अयशःकीर्तिः। द्विधागोत्रं। पंचांतरायाः। एता एकोत्तरशतकर्मप्रकृतिः सासादनगुणस्थाने सासादन सम्यग्दृष्टिर्बध्नाति। मिथ्यात्वं। नपुंसकवेदः। नरकायुः। नरकगतिः। एकद्वित्रिचतुरिंद्रियजातयः। हुंडकसंस्थानं। असंप्राप्तासृपाटिकासंहननं। नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यं। आतपः

शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, औदारिक शरीर आंगोपांग, वैक्रियकशरीर आंगोपांग, निर्माण, समचतुरस्र–न्यग्रोधपरिमण्डल– स्वाति–कुब्जक और वामनसंस्थान, वज्रवृषभनाराच, वज्रनाराच, नाराच, अर्धनाराच एवं कीलक संहनन, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, तिर्यंच, मनुष्य एवं देवगति प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उद्योत, उच्छ्वास, प्रशस्ताप्रशस्त विहायोगति, प्रत्येकशरीर, त्रस, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुस्वर, शुभ, अशुभ, बादर, पर्याप्त, स्थिर, अस्थिर, आदेय, अनादेय, यशः कीर्ति, अयशःकीर्ति, दो गोत्र, पांच अंतराय ये 101 प्रकृतियां सासादन गुणस्थान में सासादन सम्यग्दृष्टि बंध करता है। मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, नरकायु, नरकगति, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय एवं चतुरिन्द्रिय जाति, हुण्डकसंस्थान, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन, नरकगति प्रायोग्यानुपूर्वी, आतप,

स्थावरः साधारणः सूक्ष्मः अपर्याप्तिः इमा षोडशप्रकृतयः सासादन गुणस्थाने अबंधका भवति।

पंचज्ञानावरणानि। चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनानि निद्रा प्रचला। द्विधा वेदनीयं। अप्रत्याख्यान–प्रत्याख्यान–संज्वलन–क्रोध मानमायालोभाः द्वादश कषायाः हास्यादि षट्कं पुंवेदः देवगतिः मनुष्यगतिः पंचेन्द्रियजातिः औदारिकवैक्रियिक–तैजस–कार्मण–शरीराणि औदारिकांगोपांगः वैक्रियिकांगोपांगः निर्माणं समचतु –रस्रसंस्थानं वज्रवृषभनाराचसंहननं स्पर्शः रसः गंधः वर्णः देव –मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यद्वयं अगुरुलघुः उपघातः परघातः उच्छ्वासः प्रशस्तविहायोगतिः प्रत्येकशरीरः त्रसः सुभगः सुस्वरः शुभः अशुभः वादरः पर्याप्तिः स्थिरः अस्थिरः आदेयः यशः– कीर्तिः अयशःकीर्तिः उच्चैर्गोत्रं पंचांतरायाः एताश्चतुःसप्तति

स्थावर, साधारण, सूक्ष्म एवं अपर्याप्त इन 16 प्रकृतियों का सासादन गुणस्थान में अबंध होता है।

पांच ज्ञानावरण, चक्षु, अचक्षु, अवधि और केवल दर्शनावरण, निद्रा, प्रचला, दो वेदनीय, अप्रत्याख्यान–प्रत्याख्यान–संज्वलन–क्रोध, मान, माया, लोभ बारह कषायें, हास्यादि छह नो कषाय, पुंवेद, देवगति, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक–वैक्रियिक–तैजस–कार्मणशरीर, औदारिकशरीर आंगोपांग, वैक्रियकशरीर आंगोपांग, निर्माण, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रवृषभनाराचसंहनन, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, .प्रशस्त विहायोगति, प्रत्येकशरीर, त्रस, सुभग, . सुस्वर, शुभ, अशुभ, बादर, पर्याप्त, स्थिर, अस्थिर, आदेय, यशः कीर्ति, अयशः कीर्ति, उच्च गोत्र और 5 अंतराय, इन 74 प्रकृतियों का

कर्मप्रकृतिः मिश्रगुणस्थाने सम्यग्मिथ्यादृष्टि बध्नाति। निद्रा–निद्रा प्रचला–प्रचला स्त्यानगृद्धिः चतुरनंतानुबंधि –कषायाः। स्त्रीवेदः तिर्यगायुः मनुष्यायुः देवायुः तिर्यग्गतिः न्यग्रोधपरिमंडल–स्वातिवामनकुब्जकसंस्थानानि। वज्रनाराच– नाराचार्द्धनाराच–कीलिकसंहननानि। तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्यं उद्योतः अप्रशस्त–विहायोगतिः दुर्भगः दुस्वरः अनादेयःनीचैर्गोत्रं इमाः सप्तविंशति प्रकृतयो मिश्रगुणस्थाने अबंधका विज्ञेयाः।

पूर्वोक्त मिश्रगुणस्थानप्रकृतिर्मनुष्यदेवायुस्तीर्थंकरत्व सहिताः सप्तसप्ततिसंख्यकाः अविरतगुणस्थाने अविरत सम्यग्–दृष्टिर्बध्नाति।

पंचज्ञानावरणानि चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणानि निद्रा प्रचला द्विधा वेदनीयं प्रत्याख्यानसंज्वलन क्रोधमानमाया

मिश्र गुणस्थान में सम्यग्मिथ्यादृष्टि बंध करता है। निद्रा–निद्रा, प्रचला–प्रचला, स्त्यानगृद्धि, अनंतानुबंधी चार कषाय, स्त्रीवेद, तिर्यंचायु, मनुष्यायु, देवायु, तिर्यंचगति, न्यग्रोधपरिमण्डल–स्वाति–वामन–कुब्जक संस्थान, वज्रनाराच–नाराच–अर्धनाराच–कीलक संहनन, तिर्यंचगति –प्रायोग्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, नीचगोत्र इन 27 प्रकृतियों का मिश्र गुणस्थान में अबंध जानना चाहिए।

पूर्वोक्त मिश्रगुणस्थान में बंधने वाली 74 प्रकृतियाँ तथा मनुष्यायु, देवायु एवं तीर्थंकर इन तीन प्रकृतियों सहित, अविरत सम्यग्दृष्टि के चतुर्थ गुणस्थान में 77 प्रकृतियों का बंध होता है।

पांच ज्ञानावरण, चक्षु–अचक्षु–अवधि–केवलदर्शनावरण, निद्रा, प्रचला, दो वेदनीय, प्रत्याख्यान एवं संज्वलनक्रोध–मान–माया–लोभ,

–लोभाः पुंवेदः हास्यादिषट्कं देवायुः देवगतिः पंचेन्द्रिय–जातिः। वैक्रियिकतैजसकार्मणशरीराणि वैक्रियिकां– गोपांगः निर्माणं समचतुरस्रसंस्थानं स्पर्शः रसः गंधः वर्णः देवगति–प्रायोग्यानुपूर्व्यं अगुरुलघुः उपघातः परघातः उच्छ्वासः प्रशस्त–विहायोगतिः। प्रत्येकशरीरः त्रसः सुभगः सुस्वरः शुभः अशुभः बादरः पर्याप्तिः स्थिरः अस्थिरः आदेयः यशः कीर्तिः। अयशःकीर्तिं तीर्थकरत्वं उच्चैर्गोत्रं पंचातरायाः एता सप्तषष्टिप्रकृति देशविरतगुणस्थाने संयतासंयतो बध्नाति। अप्रत्याख्यानावरणक्रोधमानमायालोभाः मनुष्यायुः मनुष्यगतिः औदारिकशरीरः औदारिकांगोपांगः वज्रर्षभनाराचसंहननः मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यं इमा दशप्रकृतयः पंचमगुणस्थाने अबंधका ज्ञातव्याः।

पुंवेद, हास्यादि 6 नोकषाय, देवायु, देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियक –तैजस एवं कार्मण शरीर, वैक्रियिकांगोपांग, निर्माण, समचतुरस्र संस्थान, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, प्रत्येक शरीर, त्रस, सुभग, सुस्वर, शुभ, अशुभ, बादर, पर्याप्त, स्थिर, अस्थिर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशः कीर्ति, तीर्थंकर, उच्चगोत्र, पंचांतराय इन 67 प्रकृतियों का देशविरत गुणस्थान में संयतासंयत बंध करता है। अप्रत्याख्यानावरण क्रोध–मान–माया–लोभ, मनुष्यायु, मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिक आंगोपांग, वज्रवृषभनाराचसंहनन और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी इन दश प्रकृतियों का पंचम गुणस्थान में अबंध जानना चाहिए।

पंचज्ञानावरणानि चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणानि निद्रा प्रचला द्विधावेदनीयं संज्वलनचतुष्कं हास्यादिषट्कं पुंवेदः देवायुः देवगतिः पंचेन्द्रियजातिः वैक्रियिकतैजसकार्मणशरीराणि वैक्रियिकांगोपांगः निर्माणं समचतुरस्रसंस्थानं स्पर्शः रसः गंधः वर्णः देवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यं अगुरुलघुः उपघातः परघातः उच्छ्वासः प्रशस्तविहायोगतिः प्रत्येकशरीरः त्रसः सुभगः सुस्वरः शुभः अशुभः बादरः पर्याप्तिः स्थिरः अस्थिरः आदेयः यशःकीर्तिः अयशःकीर्तिः तीर्थंकरत्वं उच्चैर्गोत्रं पंचांतरायाः एताः त्रिषष्ठिकर्मप्रकृतिः[1] प्रमत्तगुणस्थाने प्रमत्तसंयता बध्नाति। एतस्मिन्नेवगुणस्थाने प्रत्याख्यानावरणप्रकृतिः चतुस्रः अबंधका विज्ञेयाः।

पंचज्ञानावरणानि चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणानि

पंचज्ञानावरण, चक्षु, अचक्षु, अवधि एवं केवल दर्शनावरण, निद्रा, प्रचला, दो वेदनीय, संज्वलनचतुष्क, हास्यादिषट्, पुंवेद, देवायु, देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक, तैजस एवं कार्मण शरीर, वैक्रियक आंगोपांग, निर्माण, समचतुरस्र संस्थान, स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, देवगति –प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, प्रत्येक शरीर, त्रस, सुभग, सुस्वर, शुभ, अशुभ, बादर, पर्याप्त, स्थिर, अस्थिर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, तीर्थंकर, उच्चगोत्र और पांच अंतराय, इन 63 प्रकृतियों का प्रमत्तसंयत जीव प्रमत्तसंयत गुणस्थान में बंध करता है। इस गुणस्थान में प्रत्याख्यानावरण चतुष्क का अबंध जानना चाहिए।

पांच ज्ञानावरण, चक्षु, अचक्षु, अवधि एवं केवल दर्शनावरण,

निद्रा प्रचला सातावेदनीयं चतुः संज्वलनकषायाः हास्यं रतिः भयं जुगुप्साः पुंवेदः देवायुः देवगतिः पंचेन्द्रियजातिः वैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणशरीराणि वैक्रियिकांगोपांगः आहारकांगोपांगःनिर्माणं समचतुरस्रसंस्थानं स्पर्शः रसःगंध ाः वर्णः देवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यं अगुरुलघुः उपघातः परघातः उच्छ्वासः प्रशस्तविहायोगतिः प्रत्येकशरीरः त्रसः सुभगः सुस्वरः शुभः वादरः पर्याप्तिः स्थिरः आदेयः यशः कीर्तिं तीर्थंकरत्वं उच्चैर्गोत्रं पंचांतरायाः एता ऐकोनषष्टिप्रकृतिः अप्रमत्तगुणस्थाने अप्रमत्तसंयतो बध्नाति। असातावेदनीयं अरतिः शोकः अस्थिरः अशुभः अयशः कीर्तिं एता षट्प्रकृतयोऽस्मिन् गुणस्थानेऽबंधका भवंति।

देवायु संज्ञिकामेकां प्रकृतिं परिहृत्य शेषा अप्रमत्त बंध

निद्रा, प्रचला, साता–वेदनीय, संज्वलनकषायचतुष्क, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, पुंवेद, देवायु, देवगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिक–आहारक, तैजस–कार्मण शरीर, वैक्रियिक–आहारक आंगोपांग, निर्माण, समचतुरस्र संस्थान, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, प्रत्येक शरीर, त्रस, सुभग, सुस्वर, शुभ, बादर, पर्याप्त, स्थिर, आदेय, यशःकीर्ति, तीर्थंकर, उच्चगोत्र तथा पांच अंतराय इन 59 प्रकृतियों का अप्रमत्त गुणस्थान में अप्रमत्तसंयत बंध करता है। असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ, अयशः कीर्ति इन-6 प्रकृतियों का इस गुणस्थान में अबंध होता है।

अप्रमत्त गुणस्थान में बंध योग्य प्रकृतियों में से देवायु को

–प्रकृति अपूर्वकरणगुणस्थानस्य प्रथमभागे अष्टपंचाशत्प्रमा अपूर्वकरणो बध्नाति। ततस्ता एव निद्राप्रचलारहिताः षट्पंचा–शत्प्रमाप्रकृतिः स एवापूर्वकरणसंख्यातभागेषु बंध्नाति तत ऊध्र्व संख्येयभागे पंचेन्द्रियजातिः वैक्रियिकाहारक–तैजसकार्मणशरीराणि समचतुरस्रसंस्थानं वैक्रियिक–शरीरांगोपांगः आहारकशरीरांगोपांगः वर्णः गंधः रसः स्पर्शः देवगतिः देवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यं अगुरुलघुः उपघातः परघातः उच्छ्वासः प्रशस्तविहायोगतिः त्रसः वादरः पर्याप्तिः प्रत्येक –शरीरः स्थिरः शुभः सुभगः सुस्वरः आदेयः निर्माणतीर्थकरत्वं एतस्त्रिंशतप्रकृतिस्त्यक्त्वा शेषा षट्विंशति प्रकृतिः स एव अपूर्व –करणो बध्नाति। किं नामास्ताः प्रकृतयः पंचज्ञानावरणानि

छोड़कर शेष 58 प्रकृतियों का बंध अपूर्वकरण गुणस्थान के प्रथम भाग में अपूर्वकरण गुणस्थानवाला जीव करता है। इसके पश्चात् इन 58 प्रकृतियों में से निद्रा और प्रचला से रहित 56 प्रकृतियों का वही अपूर्वकरण गुणस्थान वाला संख्यातवें भाग में बंध करता है इसके संख्यातवें भाग ऊपर जाकर पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक–आहारक–तैजस–कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियिक शरीर आंगोपांग, आहारकशरीर आंगोपांग, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और तीर्थंकर इन तीस प्रकृतियों को छोड़कर शेष 26 प्रकृतियों का वह अपूर्वकरण गुणस्थानवाला बांधता है।

26 प्रकृतियों के नाम इस प्रकार से हैं– पांच ज्ञानावरण,

–चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणानि साता– वेदनीयं चतुःसंज्वलनकषायाः हास्यं रतिं भयं जुगुप्सा पुंवेदः यशःकीर्ति उच्चैर्गोत्रं पंचांतरायश्चेति।

ततः अनिवृत्तिगुणस्थानस्य प्रथमभागे एवं अपूर्वकरण–प्रकृति हास्यरतिभयजुगुप्सारहिता द्वाविंशंतिप्रमाः अनिवृत्ती–करणे बध्नाति। तत ऊर्द्धं पुंवेदरहिता एकविंशंतिप्रकृति अनिवृत्ति –द्वितीयभागे बध्नाति। ततः संज्वलनक्रोधरहितः विंशति प्रकृतिः तृतीयभागे बध्नाति। ततोमानरहिताः एकोनविंशति प्रकृतीः चतुर्थभागे बध्नाति। ततो मायारहिताः अष्टादशप्रकृतिः पंचमभागे बध्नाति। किं नामास्ताः पंचज्ञानावरणानि चक्षुरचक्षु –रवधिकेवलदर्शनावरणानि सातावेदनीयं लोभः[1] यशः कीर्ति उच्चैर्गोत्रं पंचांतरायाः।

चक्षु–अचक्षु–अवधि–केवलदर्शनावरण, सातावेदनीय, संज्वलनकषाय चतुष्क, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, पुंवेद, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और 5 अंतराय।

इसके बाद अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के प्रथम भाग में अपूर्वकरण गुणस्थान की 26 प्रकृतियों में से हास्य, रति, भय और जुगुप्सा से रहित शेष 22 प्रकृतियों का अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में बंध करता है। इसके ऊपर अनिवृत्तिकरण के दूसरे भाग में पुरुष वेद रहित शेष 21 प्रकृतियों का बंध करता है। तीसरे भाग में संज्वलन क्रोध रहित शेष 20 प्रकृतियों का बंध करता है। चतुर्थ भाग में संज्वलन मान रहित 19 प्रकृतियों का बंध करता है। पंचम भाग में संज्वलन माया रहित 18 प्रकृतियों का बंध करता है। इन 18 प्रकृतियों के नाम इस प्रकार हैं– पांच ज्ञानावरण, चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवलदर्शनावरण, सातावेदनीय, संज्वलनलोभ, यशः कीर्ति, उच्चगोत्र और पांच अंतराय।

तत ऊर्द्धं त एवानिवृत्तिप्रकृतिः लोभरहितः सप्तदशप्रमाणाः सूक्ष्मसांपरायगुणस्थाने सूक्ष्मसांपरायो बध्नाति।

तत ऊर्द्धं सातवेदनीयस्यामेकां प्रकृतिं उपशांतकषाय क्षीण – कषायः सयोगिकेवलिनो बध्नाति। अयोगकेवली अबंधको विज्ञेयः।

इसके ऊपर अनिवृत्तिकरण की उक्त प्रकृतियों में से लोभ रहित 17 प्रकृतियों का सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में सूक्ष्मसाम्पराय वाला जीव बन्ध करता है।

इसके ऊपर उपशांत कषाय–क्षीणकषाय–सयोगकेवलीजिन एक साता वेदनीय का बंध करते हैं। अयोग केवली को अबंधक जानना चाहिए।

विशेष टिप्पण– यहां जो ग्रन्थकार ने गुणस्थानों में अबंधक प्रकृतियों का कथन किया है वह पूर्व के गुणस्थान में व्युच्छित्ति को प्राप्त हुई प्रकृतियों मात्र का किया है। जैसे पंचम गुणस्थान में अबंधक प्रकृतियाँ दश कही गई हैं। ये दस प्रकृतियां चतुर्थ गुणस्थान में व्युच्छित्ति को प्राप्त हुई प्रकृतियां हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं समझना चाहिए कि पंचम गुणस्थानवर्ती जीव मात्र दस प्रकृतियों का ही अबंधक है। किन्तु प्रथम आदि गुणस्थानो में व्युच्छित्ति को प्राप्त प्रकृतियों का भी अबंधक है, ऐसा ग्रहण करना चाहिए। इसी प्रकार आगे के गुणस्थानों में भी ग्रहण करना चाहिए। अन्यथा ग्रन्थकार की व्यवस्था नहीं बन सकेगी। विशेष जानकारी के लिए बंध–अबंध–बंध व्युच्छित्ति वाली अग्रिम संदृष्टि देखें।

प्रकृतियों का गुणस्थान में बंध अबंध का कथन करने के पश्चात् बंध व्युच्छित्ति का निरूपण उपयोगी जानकर यहाँ पर दिया गया है जो इस प्रकार से है–

मिथ्यात्वादि गुणस्थानों में क्रमशः बंध व्युच्छित्ति–

मिथ्यात्व, हुण्डकसंस्थान, नपुंसकवेद, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, एकेन्द्रिय–द्वीन्द्रिय– त्रीन्द्रिय,–चतुरिन्द्रियजाति, सूक्ष्म, स्थावर, आतप, अपर्याप्त, साधारण, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी और नरकायु इन 16

प्रकृतियों की बंध व्युच्छित्ति मिथ्यात्व गुणस्थान के अंत में होती है।

अनंतानुबंधी चतुष्क, स्त्यानगृद्धि, निद्रा–निद्रा, प्रचलाप्रचला, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय,, न्यग्रोधपरिमण्डल–स्वाति–कुब्जक और वामन संस्थान, वज्रनाराच, नाराच, अर्धनाराच और कीलक संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, स्त्रीवेद, नीच गोत्र, तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचायु और उद्योत, इन 25 प्रकृतियों की बंध व्युच्छित्ति सासादन गुणस्थान में होती हैं।

तृतीय मिश्र गुणस्थान में बंध व्युच्छित्ति का अभाव है। चतुर्थ गुणस्थान में अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क, वज्रर्षभनाराचसंहनन, औदारिक शरीर, औदारिकांगोपांग, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और मनुष्यायु इन दस प्रकृतियों की बन्धव्युच्छित्ति होती है;

देश संयत गुणस्थान में प्रत्याख्यान चतुष्क की बंध व्युच्छित्ति होती है।

प्रमत्तसंयत गुणस्थान में अस्थिर, अशुभ, असातावेदनीय, अयशःकीर्ति, अरति और शोक इन छह प्रकृतियों की बन्ध व्युच्छित्ति होती है।

अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में एक देवायु की बंध व्युच्छित्ति होती है।

अपूर्वकरण गुणस्थान के प्रथम भाग में निद्रा और प्रचला इन दो प्रकृतियों की, छठे भाग में तीर्थंकर, निर्माण, प्रशस्त विहायोगति, पंचेन्द्रिय जाति, तैजस–कार्मण–आहारक शरीर, आहारक शरीरांगोपांग, समचतुरस्र संस्थान, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियकशरीरांगोपांग, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर और आदेय, इन तीस प्रकृतियों की तथा सप्तम भाग में हास्य, रति, भय और जुगुप्सा इन चार प्रकृतियों की बन्ध व्युच्छित्ति होती है। इस प्रकार अपूर्वकरण गुणस्थान में कुल 36 प्रकृतियों की बन्ध व्युच्छित्ति होती है।

अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के पांच भागो में क्रमशः पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध–मान–माया एवं लोभ इन पांच प्रकृतियों की बंध व्युच्छित्ति होती हे।

सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में ज्ञानावरण की पांच, दर्शनावरण की

चार, अंतराय की पांच, यशःकीर्ति और उच्चगोत्र इन 16 प्रकृतियों की बन्ध व्युच्छित्ति होती है।

उपशांत मोह और क्षीण मोह गुणस्थान में बन्ध व्युच्छित्ति का अभाव है। तथा सयोग केवली गुणस्थान में एक सातावेदनीय की बन्ध व्युच्छित्ति होती है।

विशेष– प्रसंगानुसार प्रकृति बंध के विशेष नियम इस प्रकार से ज्ञातव्य हैं– तीर्थंकर प्रकृति का बंध सम्यक्त अवस्था में ही होता है। आहारक शरीर, आहारक आंगोपागं का बंध अप्रमत्तगुणस्थान से लेकर अपूर्वकरण गुणस्थान के छठे भाग तक होता है तथा आयुकर्म का बंध मिश्र गुणस्थान और निर्वृत्ति अपर्याप्त अवस्था को प्राप्त मिश्रकाय योग के बिना मिथ्यात्व गुणस्थान से अप्रमत्तगुणस्थान पर्यंत होता है। अवशेष प्रकृतियों का बन्ध मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानों में अपनी अपनी बंध व्युच्छित्ति पर्यंत जानना। प्रथमोपशम सम्यक्त्व में तथा शेष तीन द्वितीयोपशमसम्यक्त्व, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व और क्षायिक सम्यक्त्व में असंयत से अप्रमत्त गुणस्थान पर्यंत मनुष्य ही तीर्थंकर प्रकृति के बंध का प्रारंभ केवली अथवा श्रुत केवली के पादमूल में करते हैं।

प्रथमोपशम सम्यक्त्व को पृथक् करने का कारण यह है कि इसका काल अंतर्मुहूर्त होने से इस सम्यक्त्व में सोहलकारण भावना नहीं भा सकते। अतः इस सम्यक्त्व में तीर्थंकर प्रकृति का बंध नहीं होता। इस प्रकार किन्हीं आचार्यों ने कहा है। मनुष्य ही तीर्थंकर प्रकृति का बंध करते हैं अन्य गति वाले जीव तीर्थंकर प्रकृति का बंध प्रारंभ नहीं कर सकते, क्योंकि उनके विशिष्ट सामग्री का अभाव है। इसके बंध का प्रारंभ केवलीद्वय के पादमूल में ही होता है। ऐसा नियम है, क्योंकि अन्यत्र उस प्रकार की परिणाम विशुद्धि नहीं हो सकती, जिससे तीर्थंकर प्रकृति के बंध का प्रारंभ हो सके। तीर्थंकर प्रकृति के बंध का प्रारंभ तो चतुर्थ गुणस्थान से सप्तम गुणस्थान पर्यंत ही होता है, किन्तु आगे आठवे गुणस्थान के छठे भाग पर्यंत होता रहता है।

गुणस्थानों में बन्ध–अबंध एवं बंध व्युच्छित्ति योग्यप्रकृतियों की संदृष्टि–

गुणस्थान	बन्धरूप प्रकृतियाँ	अबंध रूप प्रकृतियाँ	बन्ध से व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ
मिथ्यात्व	117	3 (आहारक शरीर, आहारक आंगोपांग, तीर्थंकर)	16 (मिथ्यात्व, हुण्डकसंस्थान, नपुंसकवेद, असम्प्राप्ता–सृपाटिकासंहनन, एकेन्द्रिय द्वीन्द्रिय–त्रीन्द्रिय–चतुरिन्द्रिय जाति, सूक्ष्म, स्थावर, आतप, अपर्याप्त, साधारण, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी और नरकायु)
सासादन	101	19 (उपर्युक्त 3 + मिथ्यात्व गुणस्थान की16 व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ)	25(अनंतानुबंधी चतुष्क स्त्यानगृद्धि, निद्रा–निद्रा, प्रचला–प्रचला, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, न्यग्रोधपरिमण्डल–स्वाति–कुब्जक और वामन संस्थान, वज्रनाराच–नाराच–अर्धनाराच और कीलक संहनन, अप्रशस्तविहायोगति, स्त्रीवेद, नीचगोत्र, तिर्यंचगति, तिर्यंच–गत्यानुपूर्वी, तिर्यंचायु और उद्योत)
मिश्र	74	46 (उपर्युक्त19 + सासादन गुणस्थान की व्युच्छिन्न 25 प्रकृतियाँ + मनुष्यायु, देवायु)	शून्य (0)

असंयत	77	43 (उपर्युक्त 46 – तीर्थंकर मनुष्यायु, देवायु)	10 (अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क, वज्रर्षभनाराच संहनन, औदारिक शरीर, औदारिकांगोपांग, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और मनुष्यायु)
देशसंयत	67	53 (उपर्युक्त43 +असंयत गुणस्थान की व्युच्छिन्न 10 प्रकृतियाँ)	4 (प्रत्याख्यानचतुष्क)
प्रमत्त संयत	63	57 (उपर्युक्त 53 + देशसंयत गुणस्थान की व्युच्छिन्न 4 प्रकृतियाँ)	6 (अस्थिर, अशुभ, असातावेदनीय, अयशःकीर्ति, अरति और शोक)
अप्रमत्त संयत	59	61 (उपर्युक्त 57 +6 अस्थिर, अशुभ, असातावेदनीय, अयशःकीर्ति, अरति और शोक)–2 (आहारक द्विक)	1 (देवायु)
अपूर्वकरण भाग –1 भाग –6	 58 56	 62 (उपर्युक्त61 + देवायु) 64 (उपर्युक्त 62 +निद्रा और प्रचला)	 2 (निद्रा और प्रचला) 30 (तीर्थंकर, निर्माण, प्रशस्त विहायोगति, पंचेन्द्रिय–जाति, तैजस,कार्मणशरीर,आहारकद्विक, समचतुरस्रसंस्थान, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकद्विक स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, अगुरुलघु,

			उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय)
भाग –7	26	94 (उपर्युक्त64 + अपूर्वकरण के छठे भाग की व्युच्छिन्न 30 प्रकृतियाँ)	4 (हास्य, रति, भय, जुगुप्सा)
अनिवृत्तिकरण			
भाग–1	22	98 (उपर्युक्त 94 + हास्य, रति, भय और जुगुप्सा)	1 (पुरुषवेद)
भाग–2	21	99 (उपर्युक्त 98 +पुरुषवेद)	1 (संज्वलनक्रोध)
भाग –3	20	100 (उपर्युक्त 99 +संज्वलनक्रोध)	1 (संज्वलनमान)
भाग –4	19	101 (उपर्युक्त100 +संज्वलनमान)	1 (संज्वलनमाया)
भाग –5	18	102 (उपर्युक्त101 +संज्वलनमाया)	1 (संज्वलनलोभ)
सूक्ष्मसाम्पराय	17	103 (उपर्युक्त102 +संज्वलनलोभ)	16 (ज्ञानावरण की 5, दर्शनावरण 4, अंतराय 5, यशःकीर्ति और उच्चगोत्र)
उपशांतकषाय	1	119 (उपर्युक्त103 +सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान की व्युच्छिन्न 16 प्रकृ.)	शून्य (0)
क्षीण कषाय	1	119 (उपर्युक्त)	शून्य (0)
सयोग केवली	1	119 (उपर्युक्त)	1 (सातावेदनीय)
अयोग केवली	0	120 (उपर्युक्त + सातावेदनीय)	शून्य (0)

स्थितिबंधः

कर्मणां स्थितिहंतारं नत्वानंतगुणांबुधिं।
स्थितिबंधसमासेन वक्ष्ये तत् स्थितिहानये।।

पंचज्ञानावरणनवदर्शनावरणासातवेदनीयपंचांतरायकर्मणां उत्कृष्टास्थितिवंधस्त्रिंशत्कोटिकोटिसागरप्रमाणः। मिथ्यात्वस्य उत्कृष्टास्थितिः सप्ततिकोटिकोटिसागरप्रमाणः। सातवेदनीय–स्त्रीवेदमनुष्यगतिमनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वाणां उत्कृष्टास्थितिः पंचदशसागरोपमकोटीकोट्यः। षोडशकषायाणां परमः स्थिति–बंधः जलधीनाम् चत्वारिंशत्कोटिकोट्यः। पुंवेदहास्यरतिदेव–गतिसमचतुस्रसंस्थानवज्रर्षभनाराचसंहननदेवगतिप्रायोग्यानु–पूर्व्यप्रशस्तविहायोगतिस्थिरशुभसुभगसुस्वरादेय–यशःकीर्ति–

कर्मों की स्थिति को नष्ट करने वाले और अनंत गुणों के सागर ऐसे अर्हंत और सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार कर, मैं अपने कर्मों की स्थिति को नाश करने के लिए संक्षेप में प्रकृति बंध के पश्चात् स्थिति बंध को कहूँगा।

पांच ज्ञानावरण, नवदर्शनावरण, असातावेदनीय, पांच अंतराय, का उत्कृष्ट स्थिति बंध 30 कोड़ा कोड़ी सागर प्रमाण है। मिथ्यात्व का उत्कृष्ट स्थिति बंध सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। सातावेदनीय, स्त्रीवेद, मनुष्यगति, मनुष्यगत्वानुपूर्वी का उत्कृष्ट स्थितिबंध 15 कोड़ाकोड़ीसागर है। सोलह कषायों का उत्कृष्ट स्थिति बंध चालीस कोड़ाकोड़ीसागर है। पुंवेद, हास्य, रति, देवगति, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रवृषभ– नाराचसंहनन, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, उच्च गोत्र का

उच्चगोत्राणां उत्कृष्टास्थितिबंधः दशसागरोपम–कोटिकोट्यः। नपुंसकवेदारतिशोकभयजुगुप्सानरकगति तिर्यगत्यैकेन्द्रिय–पंचेन्द्रियजात्यौदारिकवैक्रियिक– तैजसकार्मण–शरीरहुंडक–संस्थानऔदारिकवैक्रियिकांगोपांग–असंप्राप्तासृपाटिका–संहननवर्णरसगंधस्पर्शनरकगतितिर्यग्गति–प्रायोग्यानु–पूर्व्यागुरुलघूघातपरघातोच्छवासातपोद्योता–प्रशस्त विहायो–गतित्रसस्थावरबादरपर्याप्ति–प्रत्येकशरीरा–स्थिराशुभ दुर्भग–दुःस्वरानादेययशःकीर्तिनिर्माणनीचैर्गोत्राणाम् उत्कृष्टा स्थितिः विंशतिःकोटि–कोटिसागरप्रमाणः। नारकदेवायुषोः परास्थितिः त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणितिर्यग्मनुष्यायुषोः परमास्थिति–स्त्रीणिपल्योपमानि द्वींदियत्रीइन्द्रियचतुरिंद्रियजातिवामन

उत्कृष्ट स्थिति बंध दस कोड़ाकोड़ी सागर है। नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, नरकगति, तिर्यंचगति, एकेन्द्रियजाति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिक–वैक्रियिक–तैजस–कार्मण शरीर, हुण्डकसंस्थान, औदारिक–वैक्रियिक आंगोपांग, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन, वर्ण, रस, गंध, स्पर्श, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, तिर्यंचगति–प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, त्रस, स्थावर, वादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण और नीचगोत्र की उत्कृष्ट स्थिति 20 कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। नरकायु एवं देवायु की उत्कृष्ट स्थिति 33 सागर है। तिर्यंचायु–मनुष्यायु की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्य है। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रियजाति,

–संस्थानकीलिकसंहननसूक्ष्मापर्याप्तिसाधारण प्रकृतिना–मुत्कृष्टास्थितिरष्टादशावधिंकोटीकोट्यः। आहारकशरीरा हारा –कांगोपांगतीर्थकरनाम्ना उत्कृष्टास्थितिबंधः अंतः कोटाकोटि–प्रमाणं। न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थानं–वज्रनाराचसंहननयोरुत्कृष्टा–स्थिति र्द्वादशाब्धिकोटीकोट्यः। स्वातिसंस्थान नाराचसंहन–नयोश्चतुर्दशजलधिकोटि–कोटिसंख्यका। कुब्जकसंस्थानार्द्ध–नाराचसंहननयोः पराः स्थितिबंधः षोड्शसागरोपमकोटी कोट्यः।

सर्वत्र यावंत्यः सागरोपमकोटिकोट्यस्तावंति वर्ष–शतान्याबाधा कर्मस्थितिः।येषां तु अंतःकोटिकोट्यः स्थितिस्तेषामांतमुहूर्त्तः आबाधा। इयं संज्ञिपंचेन्द्रियस्योत्कृष्टा कर्मबंधस्थितिः।

वामनसंस्थान, कीलक संहनन, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण शरीर की उत्कृष्ट स्थिति बंध– 18 कोड़ा कोड़ी सागर है। आहारकशरीर, आहारकशरीरांगोपांग और तीर्थंकर प्रकृति की उत्कृष्ट स्थिति अंतः कोड़ा–कोड़ी सागर प्रमाण है। न्यग्रोधपरिमंडल संस्थान, वज्रनाराच संहनन की उत्कृष्ट स्थिति 12 कोड़ाकोड़ी सागर है। स्वाति संस्थान, नाराच संहनन की उत्कृष्ट स्थिति 14 कोड़ाकोड़ी सागर है। कुब्जक संस्थान, अर्द्धनाराच संहनन की उत्कृष्ट स्थिति 16 कोड़ाकोड़ी सागर है।

सर्वत्र जितने कोड़ाकोड़ी सागरोपम कर्म स्थिति है उतने वर्ष उस कर्म की आबाधा होती है। जिन कर्मों की अन्तः कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण स्थिति है, उनकी आबाधा अंतर्मुहूर्त है।

ऊपर यह संज्ञीपंचेन्द्रिय जीवों की अपेक्षा से उत्कृष्टकर्म बंध का निरूपण किया गया है।

एकेन्द्रियस्य पुनः मिथ्यात्वस्योत्कृष्टास्थितिबंधः एक-सागरः। कषायाणां सागरोपम-सप्तभागानां चत्वारोभागाः। ज्ञानावरणदर्शनवरणांतरायसातवेदनीयानामुत्कृष्टास्थितिबंधः सागरसप्तभागानां त्रयोभागाः। नामगोत्रनोकषायाणां सागरसप्तभगानां द्वौभागौ।

द्वीन्द्रियस्य मिथ्यात्वस्योत्कृष्टास्थितिःपंचविंशतिसागर-प्रमाः। त्रीन्द्रियस्य मिथ्यात्वस्योत्कृष्टास्थितिः पंचाशत-सागरोपमसंख्यका। चतुरिंद्रियस्य मिथ्यात्वस्य पराः स्थिति-बंधः शतसागरप्रमाणः। असंज्ञिपंचेन्द्रियस्य मिथ्यात्वस्योत्कृष्टा स्थितिबंधः सहस्रसागरप्रमाः। द्वीन्द्रियादीनां शेषकर्मणां स्थितिबंधः आगमात् विज्ञेयः।

एकेन्द्रिय के मिथ्यात्व का उत्कृष्ट स्थिति बंध एक सागर है। एकेन्द्रिय के कषायों की उत्कृष्ट स्थिति 4/7 सागर प्रमाण है तथा ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय इन तीन घातियाकर्मों की 19 प्रकृतियों की तथा असातावेदनीय की एकेन्द्रिय जीव के उत्कृष्ट स्थिति 3/7 सागर बंधती है। नाम, गोत्र एवं नोकषायों की एकेन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट स्थिति 2/7 सागर प्रमाण बंधती है।

द्वीन्द्रिय के मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थिति 25 सागर प्रमाण है। त्रीन्द्रिय के मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थिति 50 सागरोपम है। चतुरिन्द्रिय के मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थिति 100 सागर प्रमाण है। असंज्ञी पंचेन्द्रिय के मिथ्यात्व का उत्कृष्ट स्थिति बंध एक हजार सागर प्रमाण है। द्वीन्द्रियादि के शेष कर्मों का स्थिति बंध आगम से जानना चाहिए।

पंचज्ञानावरणचक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरण संज्वलन– लोभपंचांतरायाणां जघन्यस्थितिबंधोऽन्तर्मुहूर्त्तः। साता– वेदनीयस्य द्वादशमुहूर्तः यशःकीर्तिउच्चैर्गोत्रयोरष्टौ– मुहूर्त्ताः। क्रोधसंज्वलनस्य द्वौमासो संज्वलनमानस्यैकोमासः। संज्वलन– मायायाःअर्द्धमासः। पुरुषवेदस्याष्टौ संवत्सराः। निद्रानिद्रा– प्रचला–प्रचलास्त्यानगृद्धिनिद्राप्रचलासातवेदनीयानां– सागर– सप्तभागानां त्रयोभागाः पल्योपमासंख्यातभागहीनाः। मिथ्या– त्वस्य सागरस्यसप्तसप्तभागाः पल्योपमासंख्यात– भागहीनाः। अनंतानुबंध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानानां सागरोपम– सप्तभागानां

विशेषार्थ– द्वीन्द्रिय जीव के सभी कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति एकेन्द्रिय से 25 गुणी अधिक बंधती है। त्रीन्द्रिय जीवों के सभी कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति एकेन्द्रिय से 50 गुणी अधिक बंधती है। चतुरिन्द्रिय जीवों की सभी कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति एकेन्द्रिय से सौ गुणी एवं असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के सभी कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति एकेन्द्रिय से हजार गुणी अधिक बंधती है।

पंच ज्ञानावरण, चक्षु–अचक्षु–अवधि–केवलदर्शनावरण, संज्वलन लोभ एवं पांच अंतरायों की जघन्य स्थिति बंध अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। सातावेदनीय की 12 मुहूर्त, यशः कीर्ति और उच्चगोत्र की आठ मुहूर्त, संज्वलन क्रोध की दो माह, संज्वलन मान की एक माह, संज्वलन माया की पन्द्रह दिन, पुरुषवेद की आठ वर्ष, निद्रा–निद्रा, प्रचला–प्रचला, स्त्यानगृद्धि, निद्रा, प्रचला, असातावेदनीय की पल्योपम के असंख्यात वें भाग से हीन 3/7 सागर प्रमाण जघन्य स्थिति है। मिथ्यात्व की पल्योपम के असंख्यातवें भाग से कम 7/7 सागर प्रमाण है। अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण की जघन्य स्थिति

चत्वारोभागाः पल्योपमासंख्यातभागहीनाः। अष्टनोकषायाणां सागरसप्तभागनां द्वौभागौ पल्योपमासंख्यातभागहीनौ। नारक-देवायुषोर्दशवर्षसहस्त्राणि तिर्यग्मनुष्या-युषोरंतरमुहूर्त्तः। नरक-गतिदेवगतिविक्रियिकशरीरागोपांग-नरकगतिदेवगति-प्रायोग्यानुपूर्वाणां सागरसहस्रसप्तभागानाम् द्वौभागौ पल्यो-पमसंख्यातभागहीनौ। आहारकशरीर-आहारकांगोपांग-तीर्थकराणां अंतःकोटीकोट्यः-सागरोपम। शेषाणां सागरोपम सप्तभागानाम् द्वौभागौ पल्योपमासंख्यातभागहीनौ।

सर्वत्र जघन्यस्थितिरिति संबंधनीया। सर्वत्र चान्तरमुहूर्त आवाधा आवाधोन कर्मस्थितिः कर्मनिषेकः।

पल्योपम के असंख्यातवें भाग से कम 4/7 सागर प्रमाण है। पुरुषवेद को छोड़कर शेष आठ नोकषायों की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग से कम 2/7 सागर प्रमाण हैं। नरकायु एवं देवायु की जघन्य स्थिति दश हजार वर्ष और तिर्यंचायु एवं मनुष्य आयु की जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त है। नरकगति, देवगति, वैक्रियकशरीर, वैक्रियिकशरीर आंगोपांग, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, देवगति प्रायोग्यानुपूर्वी की जघन्य स्थिति पल्योपम के संख्यातवें भाग से कम 2000/7 सागर प्रमाण है। आहारकशरीर, आहारकशरीरांगोपांग और तीर्थंकर प्रकृति का जघन्य स्थिति बंध अन्तः कोड़ाकोड़ी सागरोपम है। शेष प्रकृतियों का जघन्य स्थिति बंध पल्योपम के असंख्यातवें भाग से कम 2/7 सागर प्रमाण है।

ऊपर जो कर्मों की स्थिति का उल्लेख है वहां सर्वत्र जघन्य स्थिति से संबंध जोड़ना चाहिए तथा इन सभी का आबाधाकाल अंतर्मुहूर्त मात्र है। इन सभी कर्मों की आवाधाकाल से कम कर्म स्थिति रूप कर्म निषेक होते हैं।

सर्वायं जघन्यस्थितिबंध सामान्यापेक्षया संज्ञिपंचेन्द्रियस्य एकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियासंज्ञीपंचेन्द्रियाणां जघन्य स्थिति-बंधो य एवोत्कृष्टः। उक्ता स एव पल्योपमासंख्यातभागहीनो दृष्टव्यः।

सामान्य अपेक्षा से संज्ञी पंचेन्द्रिय का जो जघन्य स्थिति बंध है वह एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के जघन्य स्थिति बंध में उत्कृष्ट के समान है तथा यहां सभी जगह पल्योपम के असंख्यातवें भाग से हीन की संयोजना करना चाहिए।

विशेषार्थ– उत्कृष्ट एवं जघन्य स्थिति बंध के स्वामी सिद्धांत ग्रन्थानुसार निम्न हैं– शुभाशुभ कर्म का उत्कृष्ट स्थिति बंध यथा योग्य उत्कृष्ट संक्लेश परिणाम वाले चारों गति के जीवों के ही होता है। तिर्यंच, मनुष्य व देवायु बिना अन्य 117 प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थिति बन्ध तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्लेश परिणामों से होता है और जघन्य स्थिति बन्ध यथायोग्य विशुद्ध परिणामों से होता है। तिर्यंच आदि तीन आयु का उत्कृष्ट स्थिति बंध यथायोग्य विशुद्ध परिणामों से होता है तथा जघन्य स्थिति बन्ध यथायोग्य संक्लेश परिणामों से होता है।

आहारक द्विक, तीर्थंकर और देवायु बिना शेष 116 प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थिति बंध मिथ्यादृष्टि जीव ही करता है तथा आहारकद्विक आदि चार प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थिति बंध सम्यग्दृष्टि जीव ही करता है।

देवायु की उत्कृष्ट स्थिति को अप्रमत्त गुणस्थान में जाने के सम्मुख हुआ प्रमत्त गुणस्थान वाला जीव बांधता है। आहारकद्विक की उत्कृष्ट स्थिति को प्रमत्त गुणस्थान के सन्मुख हुआ अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती संक्लेश परिणामी जीव बांधता है। तीर्थंकर प्रकृति की उत्कृष्ट स्थिति को दूसरे या तीसरे नरक में जाने के सम्मुख हुआ क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि असंयत मनुष्य ही बांधता है। देवायुबिना शेष तीन आयु, वैक्रियक शरीर, वैक्रियक शरीर आंगोपांग, नरकगति, नरक गत्यानुपूर्वी, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी,

विकलत्रय और सूक्ष्मादि तीन इन सभी का उत्कृष्ट स्थिति बन्ध मनुष्य और तिर्यंच जीव ही करते हैं। औदारिक द्विक, तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, उद्योत व असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन की उत्कृष्ट स्थिति मिथ्यादृष्टि देव और नारकी जीव ही बांधते हैं। एकेन्द्रिय, आतप और स्थावर इन तीन प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थिति बन्ध मिथ्यादृष्टि देव करते हैं। शेष 92 प्रकृतियों को उत्कृष्ट संक्लेश परिणाम वाले तथा ईषत् मध्यम संक्लेश परिणाम वाले चारों गतियों के जीव बांधते हैं।

पांच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, पांच अंतराय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और साता वेदनीय का जघन्य स्थिति बंध क्षपक सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती जीव के अंतिम समय में होता है। पुरुषवेद एवं संज्वलन कषाय चतुष्क का जघन्य स्थिति बंध क्षपक अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती जीव के होता है। तीर्थंकर और आहारक द्विक का जघन्य स्थिति बंध अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती क्षपक जीव के होता है। देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियकशरीर, वैक्रियक आंगोपांग का जघन्य स्थिति बंध असंज्ञीपंचेन्द्रिय जीव के होता है। देवायु और नरकायु का जघन्य स्थिति बंध संज्ञी अथवा असंज्ञी जीव के होता है। मनुष्य और तिर्यंचायु का जघन्य स्थिति बंध कर्मभूमियां मनुष्य या तिर्यंच करते हैं। निद्रा–निद्रा, प्रचला–प्रचला, स्त्यानगृद्धि, निद्रा, प्रचला, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी चतुष्क अप्रत्याख्यानचतुष्क, प्रत्याख्यानचतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसक वेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, तिर्यंचगति, मनुष्यगति, एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति, पंचेन्द्रिय जाति औदारिक–तैजस–कार्मणशरीर, छह संस्थान, औदारिकशरीर आंगोपाग, छह संहनन, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, तिर्यंचगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, प्रशस्त–अप्रशस्त विहायोगति, त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येकशरीर, साधारण शरीर स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुस्वर, आदेय, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण और नीचगोत्र इन प्रकृतियों का जघन्य स्थिति बंध सर्वविशुद्ध, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीव करता है।

मूल–उत्तर प्रकृतियों की उत्कृष्ट और जघन्यस्थितिसंबंधी संदृष्टि

प्रकृतियाँ		स्थितिबन्ध	
मूल प्रकृति	उत्तरप्रकृति	उत्कृष्ट	जघन्य
ज्ञानावरणीय	मतिज्ञानावरणादि पांच	30 कोड़ाकोड़ी सागरो.	अन्तर्मुहूर्त
दर्शनावरणीय	निद्रा–निद्रा,	30 कोड़ाकोड़ी सागरो.	3/7 सा.*
	प्रचला–प्रचला	30 कोड़ाकोड़ी सागरो.	3/7 सा.*
	व स्त्यानगृद्धि	30 कोड़ाकोड़ी सागरो.	3/7 सा.*
	निद्रा व प्रचला	30 कोड़ाकोड़ी सागरो.	3/7 सा.*
	चक्षु, अचक्षु,	30 कोड़ाकोड़ी सागरो.	अन्तर्मुहूर्त
	अवधि व केवलदर्शन	30 कोड़ाकोड़ी सागरो.	अन्तर्मुहूर्त
वेदनीय			
	साता	15 कोड़ाकोड़ी सागरो.	12 मुहूर्त
	असाता	30 कोड़ाकोड़ी सागरो.	3/7 सा.*
मोहनीय			
(अ) दर्शनमोहनीय	मिथ्यात्व	70 कोड़ाकोड़ी सागरो.	7/7 सा.*
(आ) चारित्रमोहनीय	अनंतानुबंधी 4	40 कोड़ाकोड़ी सागरो.	4/7 सा.*
(1) कषायवेदनीय	अप्रत्याख्यान 4	40 कोड़ाकोड़ी सागरो.	4/7 सा.*
	प्रत्याख्यान 4	40 कोड़ाकोड़ी सागरो.	4/7 सा.*
	संज्वलन क्रोध	40 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2 मास
	संज्वलन मान	40 कोड़ाकोड़ी सागरो.	1 मास
	संज्वलन माया	40 कोड़ाकोड़ी सागरो.	1 पक्ष
	संज्वलन लोभ	40 कोड़ाकोड़ी सागरो.	अन्तर्मुहूर्त
(2) नोकषायवेदनीय	स्त्रीवेद	15 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	पुरुषवेद	10 कोड़ाकोड़ी सागरो.	8 वर्ष
	नपुंसकवेद	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	हास्य	10 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	रति	10 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	अरति	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	शोक	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	भय	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7

	जुगुप्सा	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7
आयु	नरकायु	33 सागरोपम	10सहस्रवर्ष
	तिर्यंचायु	3 पल्योपम	अन्तर्मुहूर्त
	मनुष्यायु	3 पल्योपम	अन्तर्मुहूर्त
	देवायु	33 सागरोपम	10सहस्रवर्ष
नाम (पिण्डप्रकृतियां)			
(1) गति	नरक	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2000/7 सा.*
	तिर्यंच	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	मनुष्य	15 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	देव	10 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2000/ 7सा.*
(2) जाति	एकेन्द्रिय	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	द्वीन्द्रिय	18 कोड़ाकोडी सागरो.	2/7 सा.*
	त्रीन्द्रिय	18 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	चतुरिन्द्रिय	18 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7सागर
	पंचेन्द्रिय	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
(3) शरीर 5	औदारिक	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
(4) शरीरबन्धन 5	वैक्रियक	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2000/ 7सा.*
(5) शरीरसंघात 5	आहारक	अंतः कोड़ाकोड़ी	अंतः कोड़ाकोड़ी
	तैजस	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	कार्मण	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
(6) शरीरसंस्थान	समचतुरस्र	10 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	न्यग्रोधपरिमण्डल	12 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	स्वाति	14 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	कुब्जक	16 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	वामन	18 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	हुण्डक	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
(7) शरीर आंगोपांग	औदारिक	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	वैक्रियक	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2000/ 7सा.*
	आहारक	अंतः कोड़ाकोड़ी	अंतः कोड़ाकोड़ी
(8) शरीरसंहनन	वज्रर्षभनाराच	10 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*

	वज्रनाराच	12 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	नाराच	14 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	अर्धनाराच	16 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	कीलक	18 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	सृपाटिका	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
(9) वर्ण	कृष्णादि 5	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
(10) गंध	सुगंध	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	दुर्गंध	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
(11) रस	तिक्तादि 5	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
(12) स्पर्श	कर्कशादि 8	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
(13) आनुपूर्वी	नरकगति आनुपूर्वी	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2000/ 7सा.*
	तिर्यंचगति आनुपूर्वी	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	मनुष्यगति आनुपूर्वी	15 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	देवगति आनुपूर्वी	10 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2000/ 7सा.*
(14) विहायोगति	प्रशस्त	10 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	अप्रशस्त	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
(अपिण्डप्रकृतियां)	अगुरुलघु	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	उपघात	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7सा.*
	परघात	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	उच्छ्वास	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	आतप	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	उद्योत	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	त्रस	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	स्थावर	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	बादर	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	सूक्ष्म	18 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	पर्याप्त	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	अपर्याप्त	18 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	प्रत्येकशरीर	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	साधारणशरीर	18 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	स्थिर	10 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*

	अस्थिर	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	शुभ	10 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	अशुभ	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	सुभग	10 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	दुर्भग	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	सुस्वर	10 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	दुःस्वर	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	आदेय	10 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	अनादेय	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	यशःकीर्ति	10 कोड़ाकोड़ी सागरो.	8 मुहूर्त
	अयशःकीर्ति	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	निर्माण	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	तीर्थंकर	अंतः कोड़ाकोड़ी	अंतः कोड़ाको.
गोत्र	उच्च	10 कोड़ाकोड़ी सागरो.	8 मुहूर्त
	नीच	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
अंतराय	दान–लाभादि 5	30 कोड़ाकोड़ी सागरो.	अन्तमुहूर्त

नोट– 1. उपर्युक्त संदृष्टि ध.पु. 6 व महाबंध पु. 2 के अनुसार है।

2. यह संदृष्टि (*) इस चिन्ह 3/7,7/7,4/7, 2/7 सागररूप संख्या पल्योपम के असंख्यातवें भाग से हीन ग्रहण करना चाहिए, किन्तु 2000/7 सागररूप संख्या पल्योपम के संख्यातवें भाग से हीन ग्रहण करना चाहिए।

3. संदृष्टि में 2000/7 सागर* दिया है। वह असंज्ञी पंचेन्द्रिय की अपेक्षा दिया है। क्योंकि वैक्रियिक षट्क का बंध एक इन्द्रिय एवं विकलत्रय जीव नहीं करते हैं। असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव के मिथ्यात्व कर्म का उत्कृष्ट स्थिति बंध एक हजार सागर है। इससे नाम और गोत्र का जघन्य स्थिति बंध पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम 2000/7 सागर होता है।

शंका– स्त्रीवेद, हास्य, रति, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर आदि प्रकृतियों का जघन्य स्थिति बंध पल्योपम के असंख्यातवें भाग से कम सागरोपम के 2/7 भाग मात्र घटित नहीं होता है। क्यों कि इन स्त्रीवेदादि प्रकृतियों का बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति बंध नहीं होता है।

समाधान– यद्यपि इन स्त्रीवेदादि प्रकृतियों की उत्कृष्ट स्थिति बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण नहीं है तथापि मूल प्रकृति की उत्कृष्ट स्थिति के अनुसार ह्रास को प्राप्त होती हुई इन प्रकृतियों का पल्योपम के असंख्यातवें भाग से कम सागरोपम के 2/7 भागमात्र जघन्य स्थिति बंध में कोई विरोध नहीं है। (ध.पु. 6 पृ. 190)

अनुभागबंधः

कर्मानुभागनिर्मुक्तं, वीतरागं जगद्गुरुं।।
नत्वा वक्ष्येऽनुभागाख्यं, बंधं तत्रसहानये।।

ज्ञानावरणादिकर्मणां यो रसो (योऽनुभावो) रागद्वेषादिपरिणामो वाध्यवसानजनितःशुभःसुखदः अशुभो दुखदः सोनुभागबंधः। यथा अजागोमहिष्यादिक्षीराणां तीव्रमंदादिभावेन रस –विशेषो बहुधा भवति तथा कर्मपुदलानां तीव्रमंदादिभावेन स्वगत सुख–दुःखादिदानसामर्थ्यविशेषः। उत्कृष्टजघन्यादिभेदभिन्नो बहुधा कुत्रचिदात्मनि शुभपरिणामप्रकर्षात् शुभप्रकृतिनां प्रकृष्टोनुभवः अशुभप्रकृतीनां निकृष्टः अशुभपरिणामप्रकर्षे अशुभप्रकृतीनां –प्रकृष्टोनुभवः शुभप्रकृतिनां निःकृष्टोनुभवः।

अष्ट कर्मों के फल से मुक्त, राग रहित, तीनों लोगों के गुरु सर्वज्ञ देव को नमस्कार कर, मैं अपने कर्मरूपी फल से प्राप्त होने वाले रस को नाश करने के लिए कर्मों के फल का निरूपण करने वाले अनुभाग बंध का प्रकरण कहता हूँ।

ज्ञानावरणादि कर्मों का फल या विपाक जो रागद्वेषादि अध्यवसान से उत्पन्न होने वाला शुभ सुख देने वाला, अशुभ दुख देने वाला है, वह अनुभाग बंध है। जिस प्रकार बकरी गाय और भैंस आदि के दूध का अलग अलग तीव्र मंदादि रूप से रस विशेष (माधुर्य, तीखा धीमादि रूप) होता है उसी प्रकार कर्म पुद्गलों का अलग अलग स्वगत सामर्थ्य विशेष अनुभाग है। कर्मों के उत्कृष्ट जघन्य आदि बहुत भेदों से कभी जीव के शुभ परिणामों के प्रकर्ष भाव के कारण शुभ प्रकृतियों का प्रकृष्ट अनुभाग बंध होता है और अशुभ प्रकृतियों का निकृष्ट अनुभाग बंध होता है तथा अशुभ परिणामों के प्रकर्ष भाव के कारण अशुभ प्रकृतियों का प्रकृष्ट अनुभाग बंध होता है और शुभ प्रकृतियों का निकृष्ट अनुभाग बंध होता है।

विशेषार्थ-- सातावेदनीयादि शुभ प्रकृतियों का उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध विशुद्ध परिणामों से होता है और असातावेदनीयादि अशुभ (पाप) प्रकृतियों का उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध संक्लेश परिणामों से होता है तथा इनसे विपरीत परिणामों से जघन्य अनुभाग बन्ध होता है अर्थात् शुभ–प्रकृतियों का संक्लेश परिणामों से और अशुभ प्रकृतियों का विशुद्ध परिणामों से जघन्य अनुभाग बन्ध होता है। इस प्रकार सभी प्रकृतियों का अनुभाग बन्ध जानना। मन्दकषाय रूप तो विशुद्ध परिणाम तथा तीव्रकषाय रूप संक्लेश परिणाम होते हैं।

शंका– शुभ प्रकृति का संक्लेश परिणामों से जघन्य अनुभाग बन्ध होता है और विशुद्ध परिणामों से पाप–प्रकृति का जघन्य अनुभाग बन्ध होता है। ऐसा सिद्धांत का कथन है। इसमें शंका यह है कि प्रथम तो संक्लेश–परिणामों से शुभ–प्रकृति का बन्ध ही नहीं होता, क्योंकि संक्लेश परिणामों को पाप परिणाम कहते हैं और पाप परिणामों से शुभ का बन्ध नहीं होता, पाप परिणामों से पाप ही का बंध होता है? इसको उदाहरण सहित स्पष्ट करें।

समाधान– शुभ परिणामों से शुभ प्रकृतियों का ही आस्रव व बन्ध होता है और अशुभ परिणामों से पाप प्रकृतियों का ही आस्रव और बंध होता है, ऐसा एकान्त नियम नहीं है। क्योंकि 47 ध्रुवबन्धी प्रकृतियों में पुण्य और पाप दोनों प्रकार की प्रकृतियां हैं। जिनका शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के परिणामों में निरन्तर आस्रव व बन्ध होता रहता है। वे ध्रुवबन्धी 47 प्रकृतियां इस प्रकार हैं :–

पांच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, पांच अंतराय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णादिक चार, अगुरुलघु, उपघात और निर्माण नामकर्म।

इन 47 ध्रुवबन्धी प्रकृतियों में से तैजसशरीर, कार्मणशरीर, अगुरुलघु और निर्माण ये चार शुभ (पुण्य) प्रकृतियां हैं और शेष 43 अशुभ (पाप) प्रकृतियां हैं। इस प्रकार अशुभ परिणामों से उपर्युक्त चार शुभ प्रकृतियों का तो अवश्य ही बंध होता है। इनके अतिरिक्त

औदारिक या वैक्रियिक शरीर, पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, तिर्यंचायु का भी यथायोग्य जघन्य अनुभाग बंध होता है। शुभ परिणामों से उपर्युक्त 43 ध्रुव बंधी अशुभ प्रकृतियों का जघन्य अनुभाग बंध होता है।

सर्वार्थसिद्धि अध्याय 6 सूत्र 3 की टीका में भी कहा गया है – जो योग शुभ परिणामों के निमित्त से होता है वह शुभ योग है और जो योग अशुभ परिणामों के निमित्त से होता है वह अशुभ योग है। शायद कोई यह माने कि शुभ और अशुभ कर्म का कारण होने से शुभ और अशुभ योग होता है सो बात नहीं है, यदि इस प्रकार इनका लक्षण कहा जाता है तो शुभ योग ही नहीं हो सकता, क्योंकि शुभ योग को भी ज्ञानावरणादि कर्मों के बन्ध का कारण माना है।

उत्कृष्ट अनुभाग बंध के स्वामी–

पांच ज्ञानावरण, नव दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, 16 कषाय, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पुंवेद ये 5 नोकषाय, हुण्डक संस्थान, अप्रशस्त स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति, नीचगोत्र और पांच अंतराय, इन प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभाग बंध का स्वामी पंचेन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि सर्व पर्याप्तियों से पर्याप्त साकार, जागृत नियम से उत्कृष्ट संक्लेश युक्त और उत्कृष्ट अनुभाग बंध करने वाला अन्यतर 4 गति का जीव है। साता वेदनीय, यशःकीर्ति और उच्च गोत्र के उत्कृष्ट अनुभाग बंध का स्वामी, क्षपक सूक्ष्मसाम्पराय संयत और अंतिम समय में उत्कृष्ट अनुभाग बंध करने वाले अन्यतर जीव है। स्त्रीवेद, पुंवेद, हास्य, रति, न्यग्रोधपरिणिमण्डलादि चार संस्थान, वज्रनाराचादि चार संहनन का भंग मतिज्ञानावरण के समान है। किंतु विशेषता इतनी है कि यह तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणाम वाले जीव के कहना चाहिए। नरकायु, तीन जाति, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण के उत्कृष्ट अनुभाग का स्वामी सर्वपर्याप्तियों से पर्याप्त हुआ साकार, जागृत, तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणाम वाला और उत्कृष्ट

अनुभाग बंध करने वाला अन्यतर मनुष्य या संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीव है। तिर्यंच व मनुष्यायु के सबंध में भी यही कथन है। किन्तु विशेषता इतनी हैं कि यहां तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणाम वाला और उत्कृष्ट अनुभाग बंध करने वाला जीव कहना चाहिए। देवायु के उत्कृष्ट अनुभाग बंध का स्वामी साकार जागृत तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणाम वाला और उत्कृष्ट अनुभाग बंध करने वाला अन्यतर अप्रमत्त संयत जीव है। नरकगति व नरकगत्यानुपूर्वी का उत्कृष्ट संक्लेश परिणाम वाला और उत्कृष्ट अनुभाग बंध को करने वाला अन्यतर मनुष्य या पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीव है। मिथ्यादृष्टि साकार जागृत नियम से उत्कृष्ट अनुभाग बंध करने वाला अन्यतर देव और नारकी, तिर्यंच गति असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन और तिर्यग्गत्यानुपूर्वी के उत्कृष्ट अनुभाग बंध का स्वामी है। सम्यग्दृष्टि साकार, जागृत, सर्वविशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभाग बंध करने वाला अन्यतर देव और नारकी जीव मनुष्य गति, औदारिकशरीर, औदारिक आंगोपांग, वज्रर्षभनाराच संहनन और मनुष्यगत्यानुपूर्वी के उत्कृष्ट अनुभाग बंध का स्वामी है। देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिकशरीर, आहारकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियिक आंगोपांग, आहारक आंगोपांग, प्रशस्त स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, शुभ, सुस्वर, सुभग, आदेय, निर्माण व तीर्थंकर के उत्कृष्ट अनुभाग बंध का स्वामी अन्यतर क्षपक अपूर्वकरण जो परभव संबंधी नामकर्म की प्रकृतियों का अंतिम समय में उत्कृष्ट अनुभाग बंध करने वाला है वह जीव है। एकेन्द्रिय जाति और स्थावर के उत्कृष्ट अनुभाग बंध का स्वामी मिथ्यादृष्टि, साकार–जागृत, नियम से उत्कृष्ट संक्लेश परिणाम वाला और उत्कृष्ट अनुभाग बंध करने वाला अन्यतर सौधर्म और ईशान कल्प का देव है। आतप प्रकृति के उत्कृष्ट अनुभागबंध का स्वामी संज्ञी, साकार, जागृत तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणाम वाला और उत्कृष्ट अनुभाग बंध करने वाला अन्यतर तीन गति का जीव है। उद्योत प्रकृति के उत्कृष्ट अनुभाग बंध का स्वामी मिथ्यादृष्टि सर्वपर्याप्तियों

से पर्याप्त, साकार जागृत सर्वविशुद्ध, तदनंतर समय में सम्यक्त्व को प्राप्त होने वाला और उत्कृष्ट अनुभाग बंध करने वाला अन्यतर सप्तम पृथ्वी का नारकी जीव है।

जघन्य अनुभाग बन्ध के स्वामी–

अशुभ वर्णादि चार, उपघात, ज्ञानावरण पांच, अन्तराय पांच, दर्शनावरण चार, निद्रा, प्रचला, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद तथा संज्वलन चार इन तीस प्रकृतियों की जहां–जहां बन्ध व्युच्छित्ति होती है, वहां–वहां क्षपक श्रेणी वाले के जघन्य अनुभाग बन्ध होता है। अनन्तानुबन्धी चार, स्त्यानगृद्धि आदि तीन निद्रायें और मिथ्यात्व, इन आठ प्रकृतियों का मिथ्यात्वगुणस्थान में, अप्रत्याख्यान की चार कषाय असंयत गुणस्थान में, प्रत्याख्यान की चार कषाय देश संयत गुणस्थान में इस प्रकार इन गुणस्थानों में ये 16 प्रकृतियां संयम गुण को धारण करने के सम्मुख हुआ अर्थात् तदन्तर समय में संयम को प्राप्त करेगा ऐसा विशुद्ध परिणामी जघन्य अनुभाग सहित बांधता है। आहारक शरीर व आहारक आंगोपांग इन दो शुभ प्रकृतियों को प्रमत्त गुणस्थान के सम्मुख हुआ संक्लेश परिणाम वाला अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती जीव जघन्य अनुभाग सहित बांधता है। अरति और शोक को तत्प्रायोग्य विशुद्ध प्रमत्त गुणस्थानवर्ती जीव जघन्य अनुभाग सहित बांधता है। सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, देवद्विक, नरकद्विक, वैक्रियिकद्विक, देवायु व नरकायु का जघन्य अनुभाग सहित बन्ध मनुष्य व तिर्यंच करता है। तिर्यंच व मनुष्यायु का लब्ध्यपर्याप्तक जीव करता है। उद्योत और औदारिक द्विक का जघन्य अनुभाग बंध संक्लिष्ट परिणामी देव और नारकी के होता है। सप्तम नरक में सम्यक्त्व के अभिमुख विशुद्ध नारकी के तिर्यंच गति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्र का जघन्य अनुभाग बंध होता हैं। स्थावर व एकेन्द्रिय का जघन्य अनुभाग बन्ध नरकगति बिना शेष तीनगति वाले माध्यम परिणामी जीव करते हैं। आतप प्रकृति का जघन्य अनुभाग बंध भवनत्रिक और सौधर्म युगल वाले संक्लेशपरिणामी देवों के होता है। तीर्थंकर प्रकृति

एवं प्रत्ययवशादुपात्तरसविशेषो द्विधा वर्तते। स्वमुखेन परमुखेन च सर्वासां मूलप्रकृतीनां स्वमुखेनानुभवः। उत्तर –प्रकृतीनां तुल्यजातीनां परमुखेनापि भवति। आयुर्दर्शन–

द्वितीय या तृतीय नरक जाने वाले मिथ्यात्व के सम्मुख असंयत गुणस्थानवर्ती मनुष्य के जघन्य अनुभाग सहित बंधती है। परघात, उच्छ्वास, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, शुभरूप वर्ण चतुष्क, निर्माण, पंचेन्द्रिय, अगुरुलघु, इन पंद्रह प्रशस्त प्रकृतियों का चारों गति के संक्लिष्ट जीवों के तथा स्त्रीवेद और नपुंसकवेद इन दो अप्रशस्त प्रकृतियों का चारों गति के विशुद्ध परिणामी जीव जघन्य अनुभाग बंध करते हैं। "स्थिर–अस्थिर, शुभ–अशुभ, यशःकीर्ति–अयशःकीर्ति, सातावेदनीय व असातावेदनीय इन आठ प्रकृतियों का परिवर्तमान' अथवा अपरिवर्तमान मध्यम परिणामी मिथ्यादृष्टि जीव के या सम्यग्दृष्टि जीव के तथा उच्च गोत्र, 6 संस्थान, 6 संहनन, प्रशस्त–अप्रशस्त विहायोगति, मनुष्यगति, मनुष्यगत्वानुपूर्वी, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, सुभग, दुर्भग, आदेय, अनादेय ये 23 प्रकृतियाँ परिवर्तमान मध्यम परिणामी मिथ्यादृष्टि जीव के जघन्य अनुभाग सहित बंधती हैं।

(जो परिणाम संक्लेश अथवा विशुद्धि से प्रति समय बढ़ते ही जावे या घटते ही जावें पुनः पूर्वावस्था को प्राप्त न हो उन्हें अपरिवर्तमान परिणाम कहते हैं तथा जो परिणाम एक अवस्था से दूसरी अवस्था को प्राप्त होकर पुनः पूर्व अवस्था को प्राप्त हो सकें वे परिवर्तमान परिणाम हैं।)

इस प्रकार कारण वश से प्राप्त हुआ वह अनुभाग दो प्रकार से प्रवृत्त होता है– स्वमुख और परमुख से। सब मूल प्रकृतियों का अनुभाग स्वमुख से प्रवृत्त होता है। आयु, दर्शनमोहनीय और चारित्र मोहनीय के सिवाय तुल्यजातीय उत्तरप्रकृतियों का अनुभाग परमुख

चारित्रवर्जनां न हि नरकायुर्मनुष्यायुर्देवायुर्तिर्यगायुर्वा पच्यते नापि दर्शनमोहाश्चारित्रमोहमुखेन चारित्रमोहो वा दर्शनमोह-मुखेनेति।

तथा देशघातिसर्वघातिभेदेनानुभागो द्विप्रकारो भवति। देशं स्तोकं गुणं घातयंतीति देशघाती। सर्वगुणं घातयंतीति सर्वघाती।

केवलज्ञानावरणकेवलदर्शनावरणनिदानिदाप्रचला-प्रचलास्त्यानगृद्धिनिदाप्रचलानंतानुबंध्यादिद्वादशकषाय-मिथ्यात्वविंशतिप्रकृतीनामनुभागः सर्वघाती ज्ञानादि-गुणान् सर्वान् घातयंतीति दावानल इव।

से भी प्रवृत्त होता है। नरकायु के स्वमुख से तिर्यंच आयु या मनुष्य आयु का विपाक नहीं होता, दर्शनमोह चारित्रमोह रूप से और चारित्र मोह दर्शनमोह रूप से विपाक को नहीं प्राप्त होता।

देशघाति और सर्वघाति के भेद से अनुभाग बंध दो प्रकार का होता है। जो देश स्तोक गुणों को घातती है अर्थात् जीव गुणों का पूर्णरूप से घात नहीं करती, वह देशघाती है। तथा जो सम्पूर्ण गुण को घातती है, वह सर्वघाती है।

केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण, निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, स्त्यानगृद्धि, निद्रा, प्रचला, अनंतानुबंधी आदि 12 कषाय एवं मिथ्यात्व इन बीस प्रकृतियों का अनुभाग दावानल अग्नि के समान जीव के ज्ञानादि गुणों का पूर्ण रूप से घात करती हैं अतः ये सर्वघाति प्रकृतियाँ हैं।

विशेषार्थ– केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण, स्त्यानगृद्धि, निद्रा-निद्रा, प्रचलाप्रचला, निद्रा, प्रचला, अनंतानुबन्धी, अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानावरणचक्षुरचक्षुर–वधिदर्शनावरणपंचांतरायचतुःसंज्वलननवनोकषायणाम् उत्कृष्टानुभाग बंधः स सर्वघाततोऽशेषः सर्वघाती वा देशघाती वा जघन्यो देशघाती।

क्रोध, मान, माया, लोभ ये 12 कषायें और मिथ्यात्व ये 20 प्रकृतियां बंध की अपेक्षा सर्वघाती हैं तथा सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति किंचित् सर्वघाति तो है, किन्तु बन्ध योग्य नहीं है, उदय और सत्त्व में जात्यंतररूप से सर्वघाति है अतः उदय और सत्त्व की अपेक्षा 21 प्रकृतियाँ सर्वघाति हैं। ये प्रकृतियां सर्वघाति इसलिए हैं क्योंकि ये जीव के गुणों का पूर्णरूप से घात करती हैं। जैसे केवलज्ञानावरण का उदय 12 वें गुणस्थान तक रहता है। तो 12वें गुणस्थान तक केवलज्ञान का अंश भी प्रगट नहीं होता है। उसका पूर्ण रूप से आवरण रहता है। इसी प्रकार केवल दर्शनावरणादि सभी सर्वघाति प्रकृतियों के विषय में समझना चाहिए।

मति–श्रुत–अवधि–मनःपर्ययज्ञानावरण, चक्षु–अचक्षु–अवधि दर्शनावरण, पंच अंतराय, संज्वलन चतुष्क और नव नोकषाय इन 25 प्रकृतियों का जो उत्कृष्ट अनुभागबंध है, वह सर्वघाती है। इससे शेष (मध्यम) अनुभाग बंध सर्वघाती अथवा देशघाती रूप है तथा जघन्य अनुभाग देशघाती रूप है।

विशेषार्थ– मति आदि चार ज्ञानावरण, चक्षु आदि तीन दर्शनावरण, संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुंसकवेद, दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्यांतराय ये 25 प्रकृतियाँ बंध की अपेक्षा देशघाती हैं तथा उदय और सत्त्व की अपेक्षा सम्यक्त्व प्रकृति सहित 26 प्रकृतियां देशघाती

हैं। ये 26 प्रकृतियां जीवगुणों का पूर्ण रूप से घात नहीं करतीं अतः देशघाती है यथा 12 वें गुणस्थान तक मतिज्ञानावरणादि कर्म का उदय होते हुए भी मतिज्ञानादि आंशिक प्रकट रहते हैं।

घातिया कर्मों की शक्ति (स्पर्धक) लता, दारु, अस्थि और शैल की उपमा के समान चार प्रकार की है। जिस प्रकार लता आदि में क्रम से अधिक–अधिक कठोरता पाई जाती है। उसी प्रकार इन कर्मस्पर्धकों अर्थात् कर्मवर्गणा के समूहों में अपने फल देने की अनुभाग रूप शक्ति क्रम से अधिक अधिक पायी जाती है।

लता भाग से दारुभाग के अनंतवें भाग पर्यंत स्पर्धक देशघाति है, इनके उदय होने पर भी आत्मा के गुण एक देश रूप से प्रगट रहते हैं। तथा दारुभाग के अनंत भागों में से एक भाग बिना शेष बहुभाग से शैल भाग पर्यंत जो स्पर्धक हैं वे सर्वघाति हैं क्यों कि इनके उदय रहने पर आत्म गुणों का एक अंश भी प्रगट नहीं होता अथवा पूर्ण गुण प्रगट नहीं होते। जैसे जहां अवधिज्ञान का अंश भी प्रकट न हो वहां अवधिज्ञानावरण के सर्वघाति स्पर्धकों का उदय जानना चाहिए तथा जहां पर अवधिज्ञान और अवधिज्ञानावरण भी पाया जाता है वहां अवधिज्ञानावरण के देशधाति स्पर्धकों का उदय जानना। इसी प्रकार अन्य प्रकृतियों में भी कथन समझना चाहिए।

मति आदि चार ज्ञानावरण, चक्षु आदि तीन दर्शनावरण, अन्तराय पांच, संज्वलन चार और एक पुरुषवेद ये 17 प्रकृतियां शैल, अस्थि, दारू और लता इन चार भाव रूप परिणत होती हैं। जहां, शैल भाग नहीं होता वहां अस्थि, दारु, लता रूप परिणत होती हैं। तथा जहां अस्थि भाग भी नहीं है वहाँ दारू और लता रूप प्रवर्तित होती हैं। एवं जहां दारू भाग भी नहीं है वहां केवल लता रूप ही परिणत होती हैं तथा इन 17 प्रकृतियों के बिना अवशेष प्रकृतियों में से सम्यक्त्व और मिश्र प्रकृति बिना घातिया कर्म की समस्त प्रकृतियों के तीन प्रकार के भाव जानना। केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण, 5 निद्रा और अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान क्रोध– मान–माया–लोभ

सातासातावेदनीयचतुरायुः समस्तनामप्रकृतिः उच्चैर्नीचैर्गोत्रेणामुत्कृष्टाद्यनुभागबंधः घातिनां प्रतिभागः। घातिविनाशे स्वकार्यकरणसामर्थ्याभावात्। एता अघातिप्रकृतयः पुण्यपापसंज्ञाः शेषाः पूर्वोक्ताः पुनः पापाख्या भवंतीति।

रूप इन 12 कषायों के सर्वघाति स्पर्धक ही हैं, देशघाती नहीं हैं, अतः इनके स्पर्धक शैल, अस्थि और दारू के अनंतबहुभाग रूप हैं तथा शैल के बिना 2 प्रकार एवं अस्थि के बिना एक प्रकार भी पाए जाते हैं। इसलिए तीनों प्रकार के भाव रूप हैं। पुरुष वेद के बिना आठ नो कषाय शैल, अस्थि, दारु और लता रूप चारों प्रकार के अनुभाग से सहित हैं। इनमें से शैल, अस्थि, दारू व लता तथा अस्थि दारु व लता रूप अथवा दारू व लतारूप से तीन प्रकार परिणत होती हैं। केवल लता रूप के कदाचित भी परिणत नहीं होती है। दर्शनमोहनीय कर्म के लता भाग से दारु भाग के एक भाग के अनंत भागों में से एक भाग पर्यंत देशघाति के सभी स्पर्धक सम्यक्त्व प्रकृति रूप हैं तथा दारु भाग के एक भाग बिना शेष बहुभाग के अनंतखण्ड करके उनमें से अधस्तन एक खण्ड प्रमाण भिन्न जाति के सर्वघाति स्पर्धक मिश्र प्रकृति रूप जानना तथा शेष दारू भाग के बहुभाग में एक भाग बिना बहुभाग से अस्थि भाग शैलभाग पर्यंत जो स्पर्धक हैं। वे सर्वघाति मिथ्यात्व रूप जानना।

साता वेदनीय, असाता वेदनीय, चार आयु, नामकर्म की सभी प्रकृतियाँ, उच्च–नीत्र गोत्र घातिया कर्मों का प्रतिभाग है क्योंकि घातिया कर्मों के नष्ट हो जाने पर ये साता वेदनीय आदि अघातिया कर्म अपने कार्य करने से समर्थ्य नहीं होते हैं। सातावेदनीय आदि 101 अघातिया प्रकृतियां पुण्य पाप रूप होती हैं। शेष पूर्वोक्त 47 घातिया कर्मों की प्रकृतियाँ पाप रूप ही होती हैं।

अशुभप्रकृतिनां चत्वारिस्थानानि निंबकांजीरविषकालकूट –समानानि। शुभप्रकृतीनां चत्वारिस्थानानि गुड़खंडशर्करामृत– तुल्यानि।

विशेषार्थ– सर्वघाती और देशघाती के सिवाय अवशिष्ट वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र कर्म की 101 प्रकृतियाँ अघातिया जानना चाहिए। वे स्वयं तो आत्मगुणों के घातने में असमर्थ हैं, किन्तु घातिया प्रकृतियों की प्रतिभागी हैं अर्थात् उनके सहयोग से आत्मगुणों को घातने में समर्थ होती हैं। इन 101 अघातिया प्रकृतियों में ही पुण्य और पाप रूप विभाग है। शेष चार घातिया कर्मों की 47 प्रकृतियों को तो पापरूप ही जानना चाहिए। अघातिया कर्म की 101 प्रकृतियां दारु, अस्थि और शैल रूप तीन प्रकार के भावों से परिणत होती हैं ये प्रकृतियां लता रूप भावों से परिणत नहीं होती है।

अशुभ प्रकृतियों के चार स्थान– निंब, कांजीर, विष और कालकूट (हलाहल) के सामन हैं और शुभ प्रकृतियों के चार स्थान– गुड़, खाण्ड, शर्करा और अमृत के समान हैं।

विशेषार्थ– अप्रशस्त प्रकृतियों के प्रतिभाग निंब, कांजीर, विष और कालकूट के समान हैं। जिस प्रकार निम्ब, कांजीर, विष और कालकूट एक दूसरे की अपेक्षा अधिक–अधिक कटु हैं। उसी प्रकार निम्बभाग, कांजीरभाग, विषभाग और कालकूटभाग रूप अप्रशस्त प्रकृतियों के स्पर्धक दुःख के कारण हैं। अशुभ प्रकृतियां निम्ब, कांजीर, विष और कालकूट या निम्ब कांजीर विष अथवा निम्ब, कांजीर इन तीन भाव रूप परिणत होती हैं। शुभ प्रकृतियों के प्रतिभाग अर्थात् शक्ति के भेद गुड़, खाण्ड, शर्करा और अमृत के समान हैं। जैसे गुड़, खाण्ड, शर्करा और अमृत एक दूसरे से अधिक–अधिक सुख के कारण अर्थात् मिष्ट हैं उसी प्रकार गुड़ भाग, खाण्ड भाग, शर्कराभाग, और अमृत भाग रूप प्रशस्त प्रकृति के स्पर्धक अधिक–अधिक सांसारिक सुख के कारण हैं। प्रशस्त प्रकृतियां गुड़, खाण्ड, शर्करा, अमृत या गुड़, खाण्ड, शर्करा अथवा गुड़ व खाण्ड इन तीन भाव रूप परिणत होती हैं।

पंचशरीरपंचशरीरसंघातपंचशरीरबंधनानि त्रिआंगोपांग-षट्संस्थानषट्संहननपंचवर्णद्विगंधपंचरसाष्टस्पर्शा-गुरुलघूपघात-परघातातपोद्योतनिर्माणप्रत्येकसाधारणस्थिरास्थिराशुभा-शुभाः एताः प्रकृतयः पुद्गलविपाकाः पुद्गलपरिणामित्वो यत इति।

चत्वार्यायूंषि भवविपाकानि भवधारणत्वात्।

चतुरानुपूर्वाणी क्षेत्रविपाकानि क्षेत्रमाश्रित्यफलदानात्।

शेषा तु प्रकृतयो जीवविपाकाः जीवपरिणामनिमित्तत्वात्।

पांचशरीर, पांच शरीरसंघात, पांच शरीरबंधन, तीन आंगोपांग, छह संस्थान, छह संहनन, पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस, आठ स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, आतप, उद्योत, निर्माण, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ और अशुभ ये 62 प्रकृतियां पुद्गल विपाकी हैं। क्यों कि पुद्गल में ही इनका फल होता है।

भव धारण में कारण होने से चारों आयु भव विपाकी हैं। अर्थात् नरकायु तिर्यंचायु, मनुष्यायु और देवायु के चारों आयु भाव विपाकी प्रकृतियाँ हैं।

क्षेत्र के आश्रय से अर्थात् विग्रहगति में फल देने के कारण चारों आनुपूर्वी क्षेत्र विपाकी हैं। अर्थात् नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और देवगत्यानुपूर्वी ये चारों आनुपूर्वी क्षेत्र विपाकी प्रकृतियां हैं।

शेष प्रकृतियां जीव के परिणामों में निमित्त होने से जीव विपाकी हैं।

विशेषार्थ– जिन प्रकृतियों का विपाक जीव में होता है अर्थात् जो प्रकृतियां जीव के परिणामों के आश्रित होती हैं उन्हें जीव विपाकी कहते हैं। जीव विपाकी प्रकृतियां 78 होती हैं। जो इस प्रकार हैं– पांच ज्ञानावरण, नव दर्शनावरण, दो वेदनीय, 28 मोहनीय, चार गति, पांच जाति, उच्छ्वास, प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगति, त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुस्वर, आदेय, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, तीर्थंकर दो गोत्र और पांच अंतराय।

प्रदेशबंधः

वीरंजगत्त्रयाधीशं, प्रदेशबंधनाशिनं।
नत्वा वक्ष्ये प्रदेशाख्यं, बंधं तत्–बंधहानये।।

यत्र आकाशप्रदेशे कर्मादानतत्पर आत्मातिष्ठति तत्रैव क्षेत्रे अनंतानंताः सूक्ष्मज्ञानावरणादिकर्मबंधयोग्याः पुद्गलाण–वस्तिष्ठंति तेनंतानंतपरमाणवः मनोवाक्कायव्यापारविशेषात् सर्वेष्वात्मप्रदेशेषु ऊर्द्धअधस्तिर्यक्षु यत् परस्परं संश्लेषरूपेण समयं समयं प्रति संबंधं यांति स प्रदेशबंध। शुभाशुभयोगेन प्रकृतिप्रदेशबंधौ प्राणी बध्नाति। कषायेन स्थित्यनुभागबंधौ जीवो बध्नाति।

कर्मों के प्रदेश बंध को नष्ट करने वाले, तीनों लोकों के स्वामी वीरजिन को नमस्कार करके मैं अपने प्रदेश बंध को नष्ट करने के लिए प्रदेश बंध का निरूपण करता हूँ।

जिन आकाश प्रदेशों में कर्म को ग्रहण करने में तत्पर जीव रहता है। उस ही क्षेत्र में ज्ञानावरणादि कर्म बंध के योग्य अनंतानंत सूक्ष्म पुद्गल परमाणु रहते हैं। वे अनंतानंत परमाणु मन वचन एवं काय के व्यापार विशेष से ऊपर नीचे और तिरछे सम्पूर्ण आत्म प्रदेशों से प्रति समय संबंध को प्राप्त होते हैं, उसे प्रदेश बंध कहते हैं। जीव शुभ अशुभ योग से प्रकृति और प्रदेश बंध करता है तथा कषाय से स्थिति और अनुभाग बंध करता है।

विशेषार्थ – एक क्षेत्र में स्थित सूक्ष्म ज्ञानावरणादि कर्मरूप परिणमन के योग्य ऊपर, नीचे और तिरछे सब आत्म प्रदेशों में व्याप्त पुद्गल मन–वचन और काय के व्यापार विशेष के कारण प्रति समय जीव से

कायोत्सर्गदृढासन–निर्विकारसाम्य–गुरुसेवादि शुभ–कायेन। सत्यहितमितभाषणधर्मोपदेशनपंचनमस्कारजपन जिनेन्द्रगुर्वादिस्तवनकरण–सिद्धांतपठनादिशुभवचनेन। तत्वा–वलंबनप्रशस्तध्यानकरण–जिनेंद्रादि–गुणस्मरणसंसारदेहभोग वैराग्यभावना–मोक्षोपाय–चिंतनादि शुभमनसा च शुभ–प्रकृतिप्रदेशबंधौ देही स्वीकुरुते।

प्राणिघातवध–बंधनानायतनगमनस्वेच्छाचरणविकार–कारणाद्यशुभकायेन। अनृतपरुषकटु–कर्मादि–भाषणपरनिंदन मिथ्योपदेशनधर्मविरुद्ध–जल्पनविकथा–करणाद्यशुभवचनेन

संबंध को प्राप्त होते हैं, उसे प्रदेश बंध कहते हैं।

कर्म योग्य पुद्गल परमाणु, कहीं बाहर से नहीं आते अपितु जीव के ग्रहीत शरीर में व्याप्त आकाश प्रदेशों में रहते हैं और वे ही कर्मरूप परिणमन कर जाते हैं।

शुभ काय से अर्थात् कायोत्सर्ग–दृढ़ासन–निर्विकार–साम्य मुद्रा वाले गुरु आदि की सेवा, सत्य, हित, मित, प्रियभाषण, धर्मोपदेश, पंच नमस्कारजाप, जिनेन्द्र गुरु आदि का स्तवन(स्तुति) करना, सिद्धांत शास्त्रों का पढ़ना आदि शुभ वचन से तथा तत्त्व का अवलंबन, प्रशस्त ध्यान, जिनेन्द्रादि पंचपरमेष्ठियों के गुणों का स्मरण, संसार, शरीर भोगों से वैराग्य की भावना, मोक्ष के उपाय का चिंतनादि शुभ परिणामों से जीव शुभ प्रकृति और प्रदेश बंध को करता है।

प्राणिघात, वध, बंधन,.अनायतनगमन, स्वेच्छाचरण, विकार उत्पन्न करने वाली अशुभ काय असत्य, परुष, कटुक आदि रूपवचन, दूसरों की निंदा, झूठा उपदेश, धर्म विरूद्ध बोलना, विकथा करना आदि

परस्त्रीधनादानचिंतन–विषयसुखसौंदर्यस्मरण–कुशास्त्रा–दिधारणा–मिथ्या– देवप्रशंसाद्यशुभचिंतनेन च संसारी अशुभ – प्रकृतिप्रदेशबंधौ बध्नाति।

ज्ञानं ज्ञानिजन–दोषभाषण–पैशून्यपरिणाम–विद्यागर्वज्ञान गुर्वादिनिह्नव–पठनादिविघ्नकरण–ज्ञानविनय–प्रकाशन गुणकीर्तिनाद्यनुष्ठानपठन–योग्यापाठनाचार्योपाध्यायसाधु प्रत्यनीकत्वाकालध्ययनकूटपठन–श्रद्धाभावालस्यानादरश्रवण तीर्थोपरोधबहुश्रुत–मात्सर्य–कुज्ञानभावन बहुश्रुतावमाना–नैकांतमतत्यजनैकांतमतस्थापन–सिद्धांतविरुद्ध स्वेच्छाजल्प–नोत्सूत्रभाषण मिथ्योपदेश–शास्त्रविक्रय–विकथाकरण–

अशुभ वचन से परस्त्री एवं परधन ग्रहण चिंतन, विषयसुख एवं सौंदर्य स्मरण, कुशास्त्रादि धारण, मिथ्या देव प्रशंसा आदि अशुभ परिणामों से जीव अशुभ प्रकृति और प्रदेश बंध करता है।

ज्ञान और ज्ञानी जनों के विषय में दोष युक्त बोलना, ईर्ष्याभाव, विद्या का गर्व, विद्यागुरु आदि का नाम छिपाना, पढ़ने आदि में विघ्न करना, ज्ञान विषय प्रकाशन में अनादर, गुण कीर्तिनादि कार्य में अनादर, पठन योग्य शास्त्र को नहीं पढ़ाना, आचार्य और उपाध्याय के प्रतिकूल चलना, अकाल अध्ययन, मिथ्या शास्त्र पढ़ना, अश्रद्धा, अभ्यास में आलस्य, अनादर से अर्थ सुनना, तीर्थोपरोध अर्थात् दिव्य ध्वनि के समय स्वयं व्याख्या करने लगना, बहुश्रुतपने का गर्व, खोटे ज्ञान की भावना, बहुश्रुत का अपमान, अनेकांत मत को छोड़कर एकांत मत की स्थापना, अपनी इच्छानुसार सिद्धांत विरुद्ध बोलना, सूत्र विरुद्ध बोलना, मिथ्योपदेश, शास्त्र बेचना, विकथा करना,

मौनरहितभोजनमलोत्सर्ग–मैथुनादिसेवन प्राणातिपात–मृषावादपरनिंदादयो ज्ञानावरणाश्रवस्य हेतवो विज्ञेयाः।

नेत्रोत्पाटनपरस्त्री–मुखयोनि–श्रृंगारादिदर्शन कुतीर्थ–मिथ्यात्वस्थापन पापकार्याद्यवलोकनेंद्रिय–विकारकरण धर्मिजनासहन दर्शनमात्सर्यांतरायजिनधर्मप्रत्यनीकत्व जिनधर्म –महोत्सवजिनचैत्यचैत्यालयनिर्ग्रंथानवलोकन–दृष्टिगौरव दिवाशयनबहुनिद्रालस्यनास्तिकांगीकारसम्यग्दृष्टिज्ञानिज्ञान तपस्विसंदूषणकुतीर्थ–मिथ्यादृष्टि–प्रशंसा–यतिजन–जुगुप्सा हिंसानृत–पर–धनहरणादयो दर्शनावरणकर्मणां हेतवो भवंति।

मौन रहित भोजन करना, अध्ययन करते समय शरीर से मल (नासिका, कर्ण, नेत्र इत्यादि से) निकालना, मैथुन सेवन, हिंसादि कार्य करना, झूठ बोलना, दूसरों की निंदा करना ज्ञानावरण कर्म के आश्रव के कारण जानना चाहिए।

आंखें फोड़ना, परस्त्री का मुख, योनि, श्रृंगारादि देखना, कुतीर्थ एवं मिथ्यात्वमत की स्थापना, पाप आदि कार्य करना, चक्षु इन्द्रिय में विकार करना, धर्मीजनों के प्रभाव को सहन नहीं कर पाना, दर्शनमात्सर्य, दर्शनअंतराय, जिन धर्म के विपरीत चलना, जिनधर्म के महोत्सव जिन चैत्य चैत्यलय और निर्ग्रन्थ साधुओं को नहीं देखना, दृष्टि का गर्व, दिन में सोना, बहुत निद्रा लेना, अति आलस्य करना, नास्तिकता को धारण करना, सम्यग्दृष्टि की श्रद्धा में, ज्ञानि के ज्ञान में, तपस्वी के चारित्र में दूषण लगाना, कुतीर्थ एवं मिथ्यादृष्टि प्रशंसा, यति जनों के प्रति ग्लानि भाव, हिंसा करना, झूठ बोलना, दूसरों के धन का हरण करना इत्यादि दर्शनावरण कर्म के आश्रव के कारण हैं।

दुःख-शोकरोदनाक्रंदन-संताप-परिभवविषाद-तीव्रखेद-संक्लेश-वध-बंधनांगोपांगछेदन-भेदन-ताडन-त्रासन-तर्जनोच्चाटन-निरोधन-मर्दन-दमन-निर्भत्सनहिंसन निष्ठुरत्व-निर्दयत्वाशुभोपयोग-परपरिवाद-पैशून्य-कटुकालाप-मृषावाद-परद्रव्यापहार-परनिंदात्मप्रशंसा-संक्लेशोत्पादन महारंभप्रवर्तन-बहुपरिग्रहसंग्रहवक्रता निःशीलत्वपापकर्मप्रवीण-त्वानर्थदंड-करणविषमिश्रणशरजालपाशपंजरयंत्रायुधाग्नि यष्टिकादान-परस्त्री-विषयलंपटत्वनिशाभोजनाखाद्यभक्षण- मनोवाक्काय-कौटिल्यान्नपाननिरोध-कृपणत्व-स्वेच्छाचरणा-दीन् यः स्वयं करोति धान्येषां कारयति स्वान्योश्चोत्पादयति तस्यासाता -वेदनीय-कर्माश्रव-निमित्तास्ते दुःखादयो भवंति।

दुख, शोक, रोदन, आक्रंदन, संताप, परिभव, विषाद, अतिखेद, संक्लेश, वध, बंधन-आंगोपांग-छेदन-भेदन-ताडन-त्रासन-तर्जन-उच्चाटन- निरोधन-मर्दन-दमन-भर्त्सन-हिंसन- निष्ठुरता, निर्दयता, अशुभोपयोग, परपरिवाद, पैशून्य, कठोर बोलना, झूठबोलना, दूसरों के द्रव्य का हरण, दूसरों की निंदा, अपनी प्रशंसा, संक्लेश को उत्पन्न करने वाले महारंभ में प्रवृत्ति, बहु परिग्रह का संचय, योगों की वक्रता, शीलरहित, पापकर्म में प्रवीणता, अनर्थदण्ड करना, विष मिलाना, बाण, जाल, पाश, पिंजरा, यन्त्र, शस्त्र, अग्नि, लाठी आदि दूसरों को देना, परस्त्री विषय लंपटत्व, रात्रि भोजन, अभक्ष्य भक्षण, मन वचन काय की कुटिलता, अन्नपान निरोध, कृपणत्व, स्वेच्छाचरण (अपनी इच्छानुसार कुछ भी करना) उपर्युक्त कारणों को जो स्वयं करता, दूसरों से करवाता, अपने या दूसरों के लिए साधन उपलब्ध कराता है। उसके ये कर्म असातावेदनीय कर्म के आश्रव के कारण हैं और ये आश्रव दुःख रूप होते हैं।

सर्वसत्वमैत्री–गुणिप्रमोद–क्लिष्टांगि–कृपापात्रदान परोपकार–क्षमा–मार्दव–निर्लोभत्वसरागसंयम–संयमासंयम तपोजिन–स्मरण–निर्ग्रंथगुरु–सेवार्हद्–भक्ति–जिनधर्मप्रभावना धर्मिजनस्नेह–वात्सल्य–ध्यानाध्ययनपंचनमस्कारजपन–जिनपूजन–शुभाशय–वैयावृतयकरण–धर्मोपदेशजितेंद्रित्व–जिनचैत्यालय–विंबसिद्धान्तोद्धारकरण–विनयादयः साता–वेदनीयकर्मणामाश्रवहेतवो ज्ञातव्याः।

केवलिजिन–सिद्धान्त–देवमुनि–श्रावक–जिनशासन–जिनधर्म–सम्यग्दृष्टि–तपस्विधर्मिजनावर्णवाद–कुतीर्थनमन सुतीर्थोल्लंघनमिथ्यादृष्टि–कुज्ञान–कुतपः प्रशंसा जिनवचन–

संसार के सभी जीवों के प्रति मैत्री भाव, गुणी जनों के प्रति प्रमोद, दुखी जनों के प्रति कृपाभाव, दान, परोपकार, क्षमा, मार्दव, निर्लोभत्व, सरागसंयम, संयमासंयम, ऋद्धिधारी साधुओं का स्मरण, निर्ग्रंथ गुरु की सेवा, अर्हंत भक्ति, जिनधर्म प्रभावना, धर्मिजनों के प्रति स्नेह, वात्सल्य, ध्यान, अध्ययन, पंच नमस्कार मंत्र का जाप, जिनपूजा, प्रशस्त अभिप्राय, वैयावृत्ति, धर्मोपदेश, जितेन्द्रियत्व, जिन चैत्यालय, जिन बिम्ब एवं जिन सिद्धांत का उद्धार करना तथा विनयादि करना साता वेदनीय कर्म के आश्रव के कारण जानना चाहिए।

केवली जिन, सिद्धांत, देव, मुनि, श्रावक, जिन शासन, जिनधर्म, सम्यग्दृष्टि, तपस्वी एवं धर्मिजनों का अवर्णवाद, कुतीर्थनमन, सुतीर्थ उल्लंघन, मिथ्यादृष्टि–कुज्ञान–कुतपप्रशंसा, जिन वचन में

शंकालोकाचार-धर्माचरण-मूढत्व मिथ्यादृष्टिमाननमस्कार पूजाकरण जिनमुनिगुणकीर्तननमस्काराकरणस्नान-तर्पण-श्राद्धादिकरण-मिथ्यात्वपोषण-तत्वश्रद्धाभावादयो दर्शन-मोहास्रवस्य निमित्ताः भवन्ति।

स्वपरतीव्र-कषायोत्पादनव्रतादियुक्त-गर्हण- रौद्रपरिणाम बहुलोभाभिमान-निकृति-धर्मध्वंसननिःशीलत्वगुणितपस्वि मात्सर्य-कषायीजनसंगति-यमनियमव्रतक्षमाद्यभावादयः कषाय-वेदनीयास्रवकारणा विज्ञेयाः।

धर्मिजनदीनोपहासादिहासकंदर्पहासबहुप्रलापा- श्चर्योत्पादन-लज्जाभावादयो हास्यहेतवः स्युः। विचित्रक्रीडण-श्रृंगारादि-

---

शंका, लोकाचार एवं धर्माचरण में मूढ़ता मिथ्यादृष्टियों का सम्मान, नमस्कार पूजन, मुनिगण अप्रशंसा-अनमन, नदी आदि में स्नान, दिवंगत पूर्वजों के प्रति जल तर्पण, श्राद्ध आदि करना, मिथ्यात्व पोषण, तत्त्वश्रद्धा अभाव आदि दर्शन मोहनीय कर्म के आश्रव के कारण होते हैं।

स्वयं तीव्र कषाय करना, दूसरों में तीव्र कषाय उत्पन्न करना, व्रती निंदा, रौद्र परिणाम, बहुत लोभ, बहुत अभिमान, दुष्टता, धर्म नाश, निःशीलत्व, गुणी तपस्वी जनों के प्रति मात्सर्य भाव, कषायी लोगों की संगति, यम, नियम, व्रत एवं क्षमादिभाव का अभाव ये सब कषाय वेदनीय कर्म के आश्रव के कारण जानना चाहिए।

धर्मीजनों की दीनता पूर्वक हंसी, बहुत हंसी मजाक, कामविकार पूर्वक हंसी, बहुप्रलाप, आश्चर्य उत्पादन, लज्जा अभाव आदि हास्य वेदनीय के आश्रव के कारण हैं। विचित्र क्रीड़ा, श्रृंगारादि

दर्शनौत्सक्य-बहुविध-पीडाभाव-प्रीतिकर-वाक्यादयो रति-कर्मणो हेतवो मंतव्याः। पररतिविनाश-पापशीलसंसर्ग निंद्यक्रियाप्रोत्साहोद्वेगादिररतिवेदनीयस्य हेतुः स्यात्। स्वान्य-शोकोत्पादन-परवस्त्वाद्यादानशोकविह्वलाभिनंदादयः शोक-कर्मास्त्रव हेतवः स्युः। स्वभयत्रस्तपरिणाम-परभयकरण त्रासन-तर्जन-निर्दयत्वादिर्भयवेदनीयाश्रवस्य निमित्तो भवंति। कुशलक्रियासहन-मललिप्तगात्रमुनिजुगुप्सापरपरिवादादयो जुगुप्सावेदनीयाश्रवस्य निमित्ता विज्ञेयाः। प्रकृष्टक्रोधमाया बहुवंचने अलीकभाषणप्रबृद्धरागकामभोगासंतोषमूढत्वस्त्रीवेशधा-रित्वादयः स्त्रीवेदाश्रवकारणाः स्युः। मंदक्रोधार्जवानुत्सि-

---

देखने में उत्सुक्ता, दूसरों को अनेक प्रकार के दुख देने के भाव होना प्रीति कर वाक्यादि रति कर्म के आश्रव के कारण हैं। दूसरों की रति का विनाश, पाप शील व्यक्तियों की संगति, निंद्य क्रिया को प्रोत्साहन देना एवं उद्वेगादि अरति वेदनीय के आश्रव के कारण हैं। स्व शोक, दूसरों में शोक उत्पादन, दूसरों की वस्तु आदि का ग्रहण, शोक से विह्वल पुरुषों का अभिनंदन आदि, शोक कर्म के आश्रव के कारण हैं। स्वयं भयभीत रहना, दूसरों को भयभीत करना, त्रासन, तर्जन, निर्दयता आदि भय वेदनीय के आश्रव के कारण हैं। कुशल क्रिया को करने वालों में ग्लानि, मलिनता से युक्त मुनिराज से ग्लानि, दूसरों की बदनामी आदि जुगुप्सा वेदनीय के आश्रव के कारण जानना चाहिए। अत्यधिक क्रोध-माया, बहु वंचन, मिथ्या भाषण, तीव्रराग, काम भोग में असंतोष, मूढ़ता, स्त्री का वेश धारण आदि स्त्री वेद के आश्रव के कारण हैं। मंद क्रोध, आर्जव, अभिमान

क्त्वाल्परागस्वदारसंतोषदानपूजन–भोगवस्त्वनादरकूटा–भावादयः पुंवेदस्य हेतवो विज्ञेयाः। बहुकषायगुह्येंद्रियव्यपरोपण –स्त्रीपुरुषानंगक्रीड़ाव्यसनित्वशीलव्रतादिधारिप्रमथनस्त्रीपशु–गमनतीव्ररागनिरंतरकामभोगाकांक्षा–करणानाचारादयो नंपुसक –वेदाश्रवस्य हेतवो मन्तव्याः।

बहवारंभप्रवर्तनबहुपरिग्रहाभिलाषा मिथ्यात्वपथानुरागसप्त –व्यसनित्वनिष्ठुरानृतवचन–परधनस्त्रीहरणतीव्रकषायित्व– निर्दयत्वकृष्णलेश्यातीव्ररागसर्वेन्द्रियविषयलंपटत्वजिन– धर्मद्वेषकरण– पापपण्डितत्व–यतिजनजुगुप्सा–कुशास्त्राभ्यसन– धर्मादिविघ्नकरण–नीचजनप्रसंग–रौद्रध्यानादयो नारकायुष आश्रवहेतवो भवेयुः।

का न होना, अल्पराग, स्वदारसंतोष, दान पूजा करना, भोग–उपभोग की वस्तुऐं नहीं चाहना, कूट भावों का अभाव आदि पुरुष वेद के आश्रव के कारण जानना चाहिए। तीव्र कषाय, गुप्त इन्द्रियों का विनाश, स्त्री और पुरुषों में अनंग क्रीड़ा का व्यसन, शील व्रत धारी पुरुषों को विचकाना स्त्री और पशुओं के साथ काम भोग की इच्छा, तीव्र राग, हमेशा काम भोग की इच्छा, अनाचार प्रवर्तन आदि नपुंसक वेद के आश्रव के कारण जानना चाहिए।

बहु आरंभ प्रवर्तन, बहुपरिग्रह अभिलाषा, मिथ्यात्व के मार्ग में अनुराग, सप्त व्यसन सेवन, निष्ठुरता, असत्य वचन, पर धन तथा परस्त्री हरण, तीव्र कषाय, निर्दयता, कृष्णलेश्या, तीव्रराग, पंचेन्द्रियों के विषयों में लंपटता, जिनधर्म से द्वेष, पाप कार्यों में पाण्डित्व, यतिजनों के प्रति ग्लानि भाव, कुशास्त्रों का अभ्यास, धार्मिक कार्यों में विघ्न, नीच लोगों की संगति तथा रौद्र ध्यान आदि नरकायु के आश्रव के कारण हैं।

माया–परवंचनचातुर्यमिथ्यामार्गरतमूढत्वस्नानादिकरण पशुतरूपूजनबहुपापारंभप्रवर्तनलोभाकुलितचित्तनिःशीलत्व–कूटकर्मभूमिभेदसमरोषानर्थोद्भावनकृत्रिम हेमादिकरण जाति–कुलशीलदूषणसद्गुणालोपासदगुणख्यापनकुमार्गगमन–स्वेच्छाचरणकापोतलेश्यार्त्तध्यानादयस्तिर्यगायुराश्रव कारणा भवंति।

स्वल्पारंभपरिग्रहत्वप्रकृतिभद्रतार्जवाचारधूलिराजिस–दृशरोषनिःकपटव्यवहारकारुण्याशयप्रदोष–कुकर्म–निर्वृत्ति मधुरवचनौदासीन्यानसूयाल्पसंक्लेशदेवगुर्वादिपूजाकपोत–पीतलेश्याशुभध्यानदयो मनुष्यायुराश्रव हेतुभूता ज्ञातव्यः।

मायाचार, दूसरों को ठगने में चतुर, मिथ्यामार्ग में प्रवृत्ति, मूढ़ता, गंगा स्नान, गाय पशु एवं पीपल आदि वृक्ष की पूजन, बहुत पाप आरंभ में प्रवृत्ति, लोभ से आकुलित चित्त, निःशीलता, कूटकर्म, पृथ्वी रेखा के समान क्रोधादि, अनर्थोद्भावन, कृत्रिम स्वर्णादि बनाना, जातिकुल एवं शील में दोष लगाना, दूसरों के सद्गुणों का लोप और असद् दोषों का प्रकाशन, कुमार्गगमन, स्वेच्छाचरण, कापोत लेश्या तथा आर्त ध्यान, तिर्यंचायु के आश्रव के कारण हैं।

अल्प आरंभ, अल्प परिग्रह, प्रकृति भद्रता, आर्जव परिणाम, धूलि की रेखा के समान क्रोधादि, सरल व्यवहार, दयाभाव, प्रदोष निर्वृत्ति, दुष्ट कार्यों से निर्वृत्ति, मधुर वचन बोलना, औदासीन्यवृत्ति, ईर्ष्या रहित परिणाम, अल्प संक्लेश, देवता, गुरु आदि की पूजा करना, कापोत, पीत लेश्या के परिणाम, शुभ ध्यान आदि मनुष्य आयु के आश्रव का कारण जानना चाहिए।

सरागसंयमसंयमासंयमबालतपश्चरणजितेंद्रियत्वनिः -कषायित्व-परीषहसहिष्णुत्वदृग्व्रतशीलाचरणजिनभक्ति-पात्रदानपूजनतत्परतावैराग्यभावनाधर्मोपदेशपापनिवारण -ध्यानाध्ययनपरोपकारः धर्माचरणतत्परताविवेकत्वगुणानुराग निर्गुणमध्यस्थक्षमार्जवमार्दवादयो देवायुराश्रवस्य हेतवो विज्ञेयाः।

मनोवाक्कायवक्रताजिनेंद्रश्रुतमुनिधर्माद्यवर्णवादमिथ्या-दर्शनपिशुनचलचित्तकूटसाक्षित्वपरनिंदात्मप्रशंसानृतपुरुषा असभ्यसरागवचनपरकौतूहलोत्पादनप्रगटकरण-परद्रव्यादान महारंभपरिग्रहत्वोज्वलवेषमदमात्सर्यपरस्त्रीवशीकरणचैत्यपूजा-दानादिनिषेधनपरिविडंबनोपहास्यादिकरणदावाग्निप्रयोगप्रति

सराग संयम, संयमासंयम, बालतप, जितेन्द्रियत्व, निष्कषाय, परिषहों को सहन करना, दिग्व्रत, शीलाचरण, जिन भक्ति, पात्र दान पूजन में तत्परता, वैराग्य भावना, धर्मोपदेश, पाप निवारण, ध्यान, अध्ययन, परोपकार, धर्माचरण में तत्परता, विवेक, गुणों में अनुराग, निर्गुणों के प्रति मध्यस्थ, क्षमा, आर्जव और मार्दव आदि देवायु के आश्रव के कारण जानना चाहिए।

मन, वचन, काय की वक्रता, जिनेन्द्र देव, श्रुत, मुनि एवं धर्मादि का अवर्णवाद, मिथ्यादर्शन, पिशुनता, अस्थिरचित्त, झूठी गवाही, परनिंदा, आत्मप्रशंसा, झूठ, कठोर, असभ्य एवं राग युक्त वचन, दूसरों को कौतूहल उत्पन्न करने वाले कार्य करना,परद्रव्य हरण, बहुत आरंभ, बहुत परिग्रह, शौकीन वेष का घमण्ड, मात्सर्य, परस्त्री वशीकरण प्रयोग, चैत्य पूजा, दानादि का निषेध, दूसरों को परेशान करना, हंसी आदि उड़ाना, दावाग्नि जलवाना, प्रतिमा आयतन

–मायतनप्रतिश्रयारामविनाशक्रूरकायाक्रोशवधबंधाद्यादर –तीव्रकषायपापकर्मजीवनादयोऽशुभनाम्नो निमित्ताः भवंति। एते सर्वे विपरीताः शुभयोगादयः शुभनामाश्रवस्य हेतवः मंतव्याः।

मूढ़त्रयादिपंचविंशतिदोषरहिताः निःशंकादिगुणोपेता दर्शनविशुद्धिः ज्ञानदर्शनचारित्रतपोगुरुभक्तिकरः विनय-सम्पन्नता। शीलव्रतेषुनिरवद्याचरणानतिचारः। सिद्धान्तपठन-पाठनस्मरणादिरभीक्ष्णज्ञानोपयोगः। संसारदेहभोगादिविरक्ति –जनकः संवेगः। स्वशक्तया चतुर्विधदानकरणं त्यागः स्व-शक्त्या द्वादशप्रकारं तपः। मुनिगणासमाधिनिराकारकं साधु

विनाश, आश्रय विनाश, आराम विनाश, क्रूर कार्य, आक्रोश, वध बंधन आदि में आदर, तीव्र कषाय और पापकर्म जीविका आदि अशुभ नामकर्म के आश्रव के कारण होते हैं। अशुभ नामकर्म के आश्रवों से विपरीत शुभ नाम के आश्रव के कारण जानना चाहिए।

तीन मूढ़ता आदि 25 दोषों से रहित निःशंकित आदि गुणों से सहित दर्शन विशुद्धि है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र एवं तप से युक्त गुरु की भक्ति करना विनय संपन्नता है। शील व्रतों में निर्दोष प्रवृत्ति शील व्रतेष्वनतिचार है। सिद्धांत ग्रन्थों का पठन पाठन स्मरणादि करना अभीक्ष्णज्ञानापयोग है। संसार, देह एवं भोगादि से विरक्ति रहना संवेग है। अपनी शक्ति के अनुसार चार प्रकार का दान करना स्वशक्ति त्याग है। अपनी शक्ति के अनुसार बारह प्रकार का तप करना शक्तितस्तप है। मुनियों की असमाधि का निराकरण अर्थात्

–समाधिः। निरवद्यवैयावृत्याचार्यादिसुश्रूषावैयावृत्यकरणं। जिनपूजास्मरणस्तवाद्यनुरागोऽर्हद्भक्ति तद्वंदनाज्ञाप्रति–पालनाद्यनुराग आचार्यभक्तिः। तत् नमस्कारविनयकरणा–द्यनुरागो बहुश्रुतभक्तिः। जिनागमचिंतनपूजननिःशंकित–त्वाद्यनुरागः प्रवचनभक्तिः। सामायिकचतुर्विंशतिस्तवैकतीर्थंकर पंचपरमेष्ठिवंदनाप्रतिक्रमणप्रत्याख्यानकायोत्सर्गाणाम–खंडाचरणं आवश्यकापरिहाणिः। तपो ज्ञानादिभिः दानपूजा–प्रतिष्ठादिभिः वा जैनधर्मप्रकाशनं मार्गप्रभावना। सधर्मिस्नेहः प्रवचनवत्सलत्वं एताः षोडशभावनास्तीर्थंकर प्रकृत्याश्रव हेतुभूता विज्ञेयाः।

मुनियों की समाधि में किसी प्रकार का विघ्न उपस्थित हो तो उसका दूर करना साधु समाधि है। निर्दोष रीति से आचार्यादि की सेवा करना वैयावृत्यकरण है। जिनपूजन, स्मरण, स्तवन आदि में अनुराग अर्हद् भक्ति है। आचार्य वंदना, उनकी आज्ञा पालन आदि रूप अनुराग आचार्य भक्ति है। आचार्य आदि को नमस्कार, विनय आदि में अनुराग बहुश्रुत भक्ति है। जिनागम चिंतन, पूजन निःशंकित आदि गुणों में अनुराग प्रवचन भक्ति है। सामायिक, चतुर्विंशति स्तव–एक तीर्थंकर स्तव, पंचपरमेष्ठि वंदना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, कायोत्सर्ग इन षट् आवश्यकों का निर्दोष पालन करना आवश्यकपरिहाणि है। तप, ज्ञान, दान, पूजा एवं प्रतिष्ठादि के द्वारा जैन धर्म का प्रकाशन करना मार्ग प्रभावना है। सधर्मिजनों में स्नेह करना प्रवचन वत्सलत्व है। ये सोलह भावनायें तीर्थंकर प्रकृति के आश्रव के कारण जानना चाहिए।

परनिंदात्मप्रशंसात्मान्यसद्गुणोच्छादनासद्गुणोद्भावन –स्वदोषोच्छादनगुणाख्यापनजातिकुलैश्वर्यरूपज्ञानतपो बलाज्ञा मदकरणपरावज्ञापरिवादगुरुधर्मिजनपरिभवजिनेन्द्रमुनितपस्वि –गुणिजनाचार्यादिनमस्कारांजलिस्तुत्यभ्युत्थानाद्यकरणाव– मानमात्सर्यादीनि नीचैर्गोत्रस्य कारणानि स्युः।

परगुणग्रहणपरनिंदापरान्मुखस्वनिंदाकरणस्वगुणाख्या– पनदेवश्रुतसधर्मिगुर्वादिनमस्कारप्रतिपत्यादिकरणकुलादि गर्वा– भावधर्मशीलतानिरहंकारविनयवैयावृत्यमार्दवादयः उच्चैर्गोत्रस्य हेतवः निरूपिताः।

दानपूजनजिनचैत्यालयबिम्वप्रतिष्ठादिषु विघ्नकरणपर–

पर निंदा, आत्मप्रशंसा, दूसरों के सद् गुणों का आच्छादन, अविद्यमान गुणों का उद्भावन, अपने दोषों को छिपाना, गुणों को प्रकट करना, जाति, कुल, ऐश्वर्य, रूप, ज्ञान, तप, बल और आज्ञा आदि 8 का मद करना, पर की अवज्ञा, दूसरों की निंदा, गुरु एवं धार्मिक जनों का तिरस्कार, जिनेन्द्र देव, मुनि, तपस्वी, गुणीजन आचार्य आदि को नमस्कार, अंजलि स्तुति, आदर आदि में अवमान और मात्सर्य भाव होना ये सव नीच गोत्र के आश्रव के कारण हैं।

परगुण ग्रहण, परनिंदा परान्मुखता, अपनी निंदा करना, अपने गुणों को प्रगट नहीं करना, जिन देव, श्रुत, सधर्मि गुरु आदि को नमस्कार, आदर, कुल आदि का गर्व नहीं करना, धर्मशीलता, निरहंकार, विनय, वैयावृत्य, मार्दव आदि भाव उच्चगोत्र के आश्रव के कारण कहे गये हैं।

दान, पूजन, जिन चैत्यालय, जिनबिम्ब प्रतिष्ठा आदि में विघ्न करना, दूसरों की शक्ति को प्रकट नहीं होने देना, धर्म विच्छेद करना,

वीर्यापहरणधर्मांतरायकुशलाचरणं क्रियापरनिरोधपरभोजनादि –निवारणबंधगुह्यकर्णनासिकादिछेदनान्यवियोगकरणादयाऽ– तंरायकर्माश्रवस्य हेतुभूता भवंति।

कुशल चारित्र वाले तपस्वी गुरु आदि की पूजा में व्याघात करना, परनिरोध, दूसरों को दिये जाने वाले भोजनादि में विघ्न करना, बंधन, गुह्य अंगच्छेद, कर्ण, नासिकादि का काट देना, दूसरों का वियोग करा देना आदि अंतराय कर्म के आश्रव के कारण होते हैं।

ग्रन्थकार ने ग्रन्थ में प्रकृति बंध, स्थिति बंध, अनुभाग बंध और प्रदेश बंध का कथन क्रमशः संक्षेप रीति से किया है। प्रकृति बंध में, कर्मबंध की गुणस्थानों में बंध अबंध योग्य प्रकृतियों का कथन किया है। जिस शैली से बंध अबंध की व्यवस्था ग्रन्थकार ने ग्रन्थ में निरूपित की है उसी शैली का अनुसरण कर उदय अनुदय की व्यवस्था निरूपण की जा रही है। इस व्यवस्था से पाठकगणों को उदय अनुदय संबंधी प्रकृतियों के प्रायः नामोल्लेख उपलब्ध होते जायेंगे। अतः उसी शैली से निरूपण निम्न प्रकार है–

उदय योग्य प्रकृतियां– भेद विवक्षा से 148 प्रकृतियाँ उदय योग्य हैं। किन्तु अभेद विवक्षा से 122 प्रकृतियां उदय योग्य हैं। जो इस प्रकार हैं– 5 ज्ञानावरण , 9 दर्शनावरण, 2 वेदनीय, 28 मोहनीय, 4 आयु, चार गति, पांच जाति, पाँच शरीर, तीन आंगोपांग, 6 संस्थान, 6 संहनन, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, चार आनुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, प्रशस्तविहायोगति, अप्रशस्तविहायोगति, त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक शरीर, साधारण शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग,

दुर्भग, सुस्वर, दुस्वर, आदेय, अनादेय, यशःकर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण और तीर्थंकर इस प्रकार नामकर्म की ये 67प्रकृतियाँ, 2 गोत्र और 5 अंतराय।

मिथ्यात्वादि गुणस्थानों में उदय, अनुदय एवं उदय व्युच्छित्ति योग्य प्रकृतियां–

मिथ्यात्व गुणस्थान में उपर्युक्त 122 प्रकृतियों में से तीर्थंकर, आहारक शरीर, आहारक शरीरांगोपांग, मिश्र मोहनीय और सम्यक्त्व मोहनीय इन पांच प्रकृतियों के बिना शेष 117 प्रकृतियों का उदय है। उपर्युक्त तीर्थंकरादि पांच प्रकृतियों का अनुदय है। मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, स्थावर, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय एवं चतुरिन्द्रिय इन 10 प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है।

दूसरे सासादन गुणस्थान में उदय योग्य 122 प्रकृतियो में से तीर्थंकर, आहारक शरीर, आहारक शरीररांगोपांग, मिथ्यात्व, मिश्र मोहनीय, सम्यक्त्व मोहनीय, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, स्थावर, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और नरकगत्यानुपूर्वी इन 16 प्रकृतियों के बिना शेष 106 प्रकृतियों का उदय है। उपर्युक्त तीर्थकरादि 16 प्रकृतियों का अनुदय है। अनन्तानुबन्धी चतुष्क की उदय व्युच्छित्ति होती है।

तीसरे मिश्र गुणस्थान में उदय योग्य 122 प्रकृतियों में तीर्थंकर, आहारक शरीर, आहारक शरीर आंगोपांग, मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, स्थावर, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रय, चारों आनुपूर्वी एवं अनंतानुबंधी चतुष्क इन 22 प्रकृतियों के बिना शेष 100 प्रकृतियों का उदय है। उक्त तीर्थंकरादि 22 प्रकृतियों का अनुदय है। सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति की उदय व्युच्छित्ति होती है।

चतुर्थ असंयत गुणस्थान में उदय योग्य 122 प्रकृतियों में से तीर्थंकर, आहारक शरीर, आहारक शरीरांगोपांग, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, स्थावर, एकेन्द्रिय, विकलत्रय, (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रय) एवं अनंतानुबंधी चतुष्क इन 18

प्रकृतियों के बिना शेष 104 प्रकृतियों का उदय है। उक्त तीर्थंकरादि 18 प्रकृतियों का अनुदय है। अप्रत्याख्यानचतुष्क, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, देवायु, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु, वैक्रियक शरीर, वैक्रियकशरीरांगोपांग, मनुष्यगत्वानुपूर्वी, तिर्यंचगत्वानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय एवं अयशःकीर्ति इन 17 प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है।

पंचम देशसंयत गुणस्थान में चतुर्थ गुणस्थान में उदय योग्य 104 प्रकृतियों में से अप्रत्याख्यानचतुष्क, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, देवायु, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक शरीर आंगोपांग, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय एवं अयशः कीर्ति इन 17 प्रकृतियों के बिना शेष 87 प्रकृतियों का उदय होता है। चतुर्थ गुणस्थान में अनुदय योग्य 18 प्रकृतियों में पूर्वोक्त अप्रत्याख्यान चतुष्क आदि 17 प्रकृतियां मिलाने पर 35 प्रकृतियों का अनुदय है। प्रत्याख्यानचतुष्क, तिर्यंचायु, तिर्यंचगति, नीचगोत्र एवं उद्योत, इन आठ प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है।

प्रमत्त संयतगुणस्थान में ज्ञानावरण 5, दर्शनावरण 9, वेदनीय 2, सम्यक्त्व, संज्वलन कषाय चतुष्क, नवनोकषाय, मनुष्यायु, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक–आहारक–तैजस–कार्मण शरीर, औदारिक शरीर आंगोपांग, आहारकशरीरांगोपांग, छह संस्थान, छह संहनन, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त–अप्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, प्रत्येक, पर्याप्त, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, दुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र एवं अंतराय 5 इन 81 प्रकृतियों का उदय है। मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, अनंतानुबंधीचतुष्क, अप्रत्याख्यानचतुष्क, प्रत्याख्यान–चतुष्क, नरकगति, तिर्यंचगति, देवगति, नरकायु, तिर्यंचायु, देवायु, एकेन्द्रिय जाति, विकलत्रय, वैक्रियक शरीर, वैक्रियक शरीर आंगोपांग, चार आनुपूर्वी, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधरण, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति, नीचगोत्र और तीर्थंकर इन 41 प्रकृतियों का अनुदय है। आहारक शरीर, आहारक आंगोपांग, स्त्यानगृद्धि, निद्रा–निद्रा,

प्रचलाप्रचला इन 5 प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है।

अप्रमत्त गुणस्थान में प्रमत्त गुणस्थान में उदय योग्य 81 प्रकृतियों में से आहारक द्विक (आहारक शरीर, आहारक शरीरांगोपांग) स्त्यानगृद्धि, निद्रा–निद्रा, प्रचला–प्रचला इन 5 प्रकृतियों के बिना शेष 76 प्रकृतियों का उदय है। प्रमत्त गुणस्थान की अनुदय योग्य 41 प्रकृतियों में आहारक द्विक, स्त्यानगृद्धि, निद्रा–निद्रा, प्रचला–प्रचला, इन पांच प्रकृतियों को मिलाने पर 46 प्रकृतियों का अनुदय है। सम्यक्त्व, अर्धनाराच,कीलक एवं असंप्राप्तासृपाटिका संहनन इन चार प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है।

अपूर्वकरण गुणस्थान में अप्रमत्त गुणस्थान में उदय योग्य 76 प्रकृतियों में से सम्यक्त्व, अर्धनाराच, कीलक व संप्राप्तासृपाटिका संहनन इन 4 प्रकृतियों के बिना शेष 72 प्रकृतियों का उदय है। अप्रमत्त गुणस्थान की अनुदय योग्य 46 प्रकृतियों में सम्यक्त्व, अर्ध–नाराच, कीलक और असंप्राप्तासृपाटिका संहनन इन 4 प्रकृतियों को मिलाने पर 50 प्रकृतियों का अनुदय है। हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा इन 6 प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है।

अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में अपूर्वकरण गुणस्थान की उदय योग्य 72 प्रकृतियों में से हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा इन 6 प्रकृतियों के बिना शेष 66 प्रकृतियों का उदय होता है। अपूर्वकरण गुणस्थान में अनुदय योग्य 50 प्रकृतियों में पूर्वोक्त हास्यादि 6 प्रकृतियों को मिलाने पर 56 प्रकृतियों का अनुदय है। स्त्री–पुरुष–नपुंसक वेद, संज्वलन क्रोध, मान और माया इन 6 प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है।

सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान में अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में उदय योग्य 66 प्रकृतियों में से तीन वेद, संज्वलन क्रोध, मान, माया इन 6 प्रकृतियों के बिना शेष 60 प्रकृतियों का उदय है। अनिवृत्तिकरण गुणस्थान की अनुदय योग्य 56 प्रकृतियों में तीन वेद, संज्वलन क्रोध–मान–माया ये 6 प्रकृतियों मिलाने पर 62 प्रकृतियों का अनुदय,

तथा एक सूक्ष्म लोभ की उदय व्युच्छित्ति होती है।

उपशांत मोहगुणस्थान में सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान की उदय योग्य 60 प्रकृतियों में सूक्ष्मलोभ के बिना 59 प्रकृतियों का उदय है। सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान की अनुदय योग्य 62 प्रकृतियों में सूक्ष्मलोभ मिलाने पर 63 प्रकृतियों का अनुदय है। नाराच एवं वज्रनाराच संहनन इन दो प्रकृतियों की व्युच्छित्ति होती है।

क्षीण मोह गुणस्थान में उपशांतमोह गुणस्थान में उदययोग्य 59 प्रकृतियों में से नाराच, वज्रनाराच संहनन कम करने पर शेष 57 प्रकृतियों का उदय है। उपशांत मोह गुणस्थान में अनुदय योग्य 63 प्रकृतियों में नाराच व वज्रनाराच संहनन इन दो प्रकृतियों को मिलाने पर 65 प्रकृतियों का अनुदय है। ज्ञानावरण 5, चक्षु–अचक्षु–अवधि–केवलदर्शनावरण, निद्रा, प्रचला और अंतराय कर्म की पांच इन 16 प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है।

सयोग केवली गुणस्थान में वेदनीय दो, मनुष्यायु, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक, तैजस, कार्मण शरीर, औदारिक आंगोपांग, छह संस्थान, वज्रर्षभ नाराच संहनन, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, अप्रशस्तविहायोगति, त्रस, स्थावर, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, दुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, निर्माण, तीर्थंकर और उच्चगोत्र इन 42 प्रकृतियों का उदय है। क्षीणमोह गुणस्थान में अनुदययोग्य 65 प्रकृतियों में से तीर्थंकर प्रकृति कम करने तथा ज्ञानावरण 5, दर्शनावरण 4, निद्रा, प्रचला, अंतराय 5 ये 16 प्रकृतियां मिलाने पर 80 प्रकृतियों का अनुदय है। वज्रर्षभनाराच संहनन, निर्माण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुस्वर, दुस्वर, प्रशस्त–अप्रशस्त विहायोगति, औदारिक शरीर, औदारिक शरीरांगोपांग, तैजस–कार्मण शरीर, संस्थान 6, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, और प्रत्येक शरीर, इन 29 प्रकृतियें की उदय व्युच्छित्ति होती है।

अयोग केवली गुणस्थान में, सयोगकेवली गुणस्थान में उदय

योग्य 42 प्रकृतियों में से वज्रर्षभ नाराच संहनन आदि 29 प्रकृतियों के बिना शेषा 13 प्रकृतियों का उदय है। सयोग केवली गुणस्थान में अनुदय योग्य 80 प्रकृतियों में सयोगकेवली गुणस्थान की व्युच्छिन्न 29 प्रकृतियों को मिलाने पर 109 प्रकृतियों का अनुदय है। 2 वेदनीय, मनुष्यगति, मनुष्यायु, पंचेन्द्रिय जाति, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, यशःकीर्ति, तीर्थंकर और उच्च गोत्र इन 13 प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है।

गुणस्थानों में उदय संबंधी नियम–

आहारक शरीर और आहारक आंगोपांग का उदय प्रमत्त गुणस्थान में ही होता है। तीर्थंकर प्रकृति का उदय सयोगी और अयोग केवली के ही हैं। मिश्र मोहनीय का उदय सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान में ही है। सम्यक्त्व प्रकृति का उदय असंयतादि चार गुणस्थानवर्ती वेदक सम्यग्दृष्टि के ही हैं। आनुपूर्वी का उदय मिथ्यादृष्टि, सासादन और असंयत गुणस्थान में ही है। अन्यत्र इनके उदय का अभाव है। सासादन सम्यग्दृष्टि मरणकर नरकगति में नहीं जाता है इसी कारण उसके सासादन गुणस्थान में नरकगत्यानुपूर्वी का उदय नहीं है तथा शेष प्रकृतियों का उदय मिथ्यात्वादि गुणस्थानों में अपने–अपने उदय स्थान के अंत समयपर्यंत जानना।

गुणस्थानों में उदय, अनुदय एवं उदय व्युच्छित्ति प्रकृतियों की संदृष्टि

गुणस्थान	उदय	अनुदय	उदय व्युच्छित्ति
मिथ्यात्व	117	5	10 (मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, स्थावर, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय व चतुरिन्द्रिय,)
सासादन	106	16	4 (अनन्तानुबन्धीचतुष्क)
मिश्र	100	22	1 (सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	104	18	17 (अप्रत्याख्यानचतुष्क, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, देवायु, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु, वैक्रियक शरीर,

			वैक्रियकशरीरांगोपांग, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगत्वानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय, व अयशःकीर्ति)
देशसंयत	87	35	8 (प्रत्याख्यानचतुष्क, तिर्यंचायु, तिर्यंचगति, नीचगोत्र, उद्योत)
प्रमत्तसंयत	81	41	5 (आहारकशरीर, आहारक आंगोपांग, स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला)
अप्रमत्तसंयत	76	46	4 (सम्यक्त्व, अर्धनाराच,कीलक, असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन)
अपूर्वकरण	72	50	6 (हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा)
अनिवृत्तिकरण	66	56	6 (स्त्री–पुरुष–नपुंसकवेद, संज्वलन क्रोध, मान और माया)
सूक्ष्मसाम्पराय	60	62	1 (सूक्ष्मलोभ)
उपशांतमोह	59	63	2 (नाराच व वज्रनाराचसंहनन)
क्षीणमोह	57	65	16 (ज्ञानावरण 5, दर्शनावरण 4, निद्रा, प्रचला और अंतराय पांच)
सयोगकेवली	42	80	29 (वज्रर्षभनाराचसंहनन, निर्माण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुस्वर, दुस्वर, प्रशस्त–अप्रशस्त विहायोगति औदारिकशरीर, औदारिक–शरीरांगोपांग, तैजस–कार्मणशरीर, संस्थान 6, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास और प्रत्येक शरीर,)
अयोगकेवली	13	109	13 (साता–असातावेदनीय, मनुष्यगति, मनुष्यायु, पंचेन्द्रियजाति, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, यशःकीर्ति, तीर्थंकर और उच्चगोत्र)

कर्मणां क्षयकर्त्तारं, त्रिजगत्स्वामिनं जिनं।
प्रणम्य प्रकृतिनां वक्ष्ये क्षयं कर्महानये।

अनंतानुबंधिक्रोधमानमायालोभाः मिथ्यात्वं सम्यग्मिथ्यात्वं सम्यक्त्वं नरकायुः तिर्यगायुः देवायुः एता दशप्रकृतिं असंयत-सम्यग्दृष्टिः संयतासंयतः प्रमत्तसंयतोऽप्रमत्तसंयत्ता वा क्रमेण क्षपयति।

स्त्यानगृद्धिनिद्रा-निद्राप्रचला-प्रचलानरकगतिः तिर्यग्गतिः एकेन्द्रियजातिः द्वीन्द्रियजातिः त्रीन्द्रियजातिः चतुरिन्द्रियजातिः नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यं तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्यं आतापः

कर्म को क्षय करने वाले, तीनों जगत के स्वामी, जिनेन्द्र देव को नमस्कार करके मैं अपने कर्मों के क्षय करने के लिए कर्म प्रकृतियों की क्षयविधि को कहूँगा।

नरकायु, तिर्यंचायु और देवायु के सत्त्व विना कोई चरम शरीरी जीव परिणामों की विशुद्धि द्वारा वृद्धि को प्राप्त होता हुआ असंयत संम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्त संयत इन चार गुणस्थानों में से किसी एक गुणस्थान में मोहनीय की 7 प्रकृतियों का क्षय करके क्षायिक सम्यग्दृष्टि होकर क्षपक क्षेणी पर आरोहण करने के लिए सम्मुख होता हुआ अप्रमत्त संयत गुणस्थान में अधः प्रवृत्तकरण को प्राप्त होकर अपूर्वकरण के प्रयोग द्वारा अपूर्वकरण क्षपक गुणस्थान को प्राप्त करता है। पश्चात् अनिवृत्तिकरण की प्राप्ति के द्वारा अनिवृत्ति वादरसाम्पराय गुणस्थान पर आरोहण करके स्त्यानगृद्धि, निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, नरकगति, तिर्यंचगति,, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रियजाति, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, तिर्यंचगति-

उद्योतः स्थावरः सूक्ष्मः साधारणः एताः षोडशप्रकृति अनिवृत्तिगुणस्थानस्य प्रथमभागे संयतः क्षपयति। द्वितीयभागे अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणा अष्टौ कषायाश्च तृतीयभागे नंपुसकवेदं चतुर्थभागे स्त्रीवेदं पंचमभागे हास्यादिषट्कं षष्टमभागे पुंवेदं सप्तमभागे संज्वलनक्रोधं अष्टमभागे संज्वलनमानं। नवम-भागे संज्वलनमायां क्षपयति।

ततः सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थाने सूक्ष्मलोभं क्षपयति।

ततः क्षीणकषायस्य द्विचरमसमये निद्रा प्रचला प्रकृति क्षीणकषायी क्षपयति। ततोऽनन्तरं पंचज्ञानावरणानि चक्षुर-चक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणानि पंचांतरायाः एताश्च चतुर्दश

प्रायोग्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म और साधारण इन सोलह प्रकृतियों का अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के प्रथम भाग में एक साथ क्षय करता है। द्वितीय भाग में अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यान क्रोध-मान-माया और लोभ इन आठ कषायों का क्षय करता है। तृतीय भाग में नपुंसकवेद चतुर्थ भाग में स्त्रीवेद, पंचमभाग में हास्यादि छह नोकषाय, छठेभाग में पुरुषवेद सातवें भाग में संज्वलन क्रोध, आठवें भाग में संज्वलन मान और नवें भाग में संज्वलन माया का क्षय करता है। सूक्ष्मसाम्पराय नामक दशवें गुणस्थान में संज्वलन लोभ का क्षय करता है।

क्षीणकषाय नामक बारहवें गुणस्थान के द्विचरम समय में क्षीण कषायी जीव निद्रा और प्रचला का क्षय करता है। इसके बाद इसी गुणस्थान के अंतिम समय में पांच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण एवं

प्रकृतीस्तस्यैव गुणस्थाने उपान्तसमये एता त्रिषष्टिप्रकृतीः क्षपयित्वा सयोगिकेवलिजिनो भवति।

सयोगिकेवलिजिनो न किमपि क्षपयति। अयोगिकेवलिजिनो देवगतिः पंचशरीराणि पंचशरीरसंघाताः पंचशरीरबंधनानि त्र्यांगोपांगानि षट्संस्थानानि षट्संहननानि पंचवर्णाः द्विगंधाः पंचरसाः अष्टस्पर्शाःदेवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यं अगुरुलघुः उपघातः परघातः उच्छ्वासः द्विधा– विहायोगतिः अपर्याप्तिः प्रत्येकः स्थिरः अस्थिरः शुभः अशुभः दुर्भगः सुस्वरः दुस्वरः अनादेयः अयशःकीर्तिः असातावेदनीयं नीचेगोत्रं निर्माणं एता द्वासप्ततिः प्रकृतिः असयोगकेवली द्विचरम समये क्षपयति। ततः आदेयः मनुष्यगतिः मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यं पंचेन्द्रियजातिः मनुष्यायुः पर्याप्तिः त्रसः

पांच अंतराय इन चौदह प्रकृतियों का क्षय करके सयोगकेवलीजिन होता है।

सयोगकेवलीजिन किसी भी प्रकृति का क्षय नहीं करते हैं। अयोगकेवलीजिन द्विचरम समय में इन 72 प्रकृतियों का क्षय करते हैं– असातावेदनीय, देवगति, पांचशरीर, पांचशरीरसंघात, पांचशरीर बंधन, तीन आंगोपांग, छह संस्थान, छह संहनन, पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस, आठ स्पर्श, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगति, अपर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, सुस्वर, दुस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण एवं नीचगोत्र। इसके बाद सातावेदनीय, मनुष्यायु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, पंचेन्द्रियजाति, पर्याप्त,

बादरः सुभगः यशःकीर्तिः सातावेदनीयं उच्चैर्गोत्रं तीर्थकरत्वं एतास्त्रयोदशप्रकृतिः अयोगकेवलीगुणस्थाने चरमसमये क्षपयति। ततो जीवोऽष्टगुणमयोनंतसुखसंपन्नः सिध्दो भवति।

त्रस, बादर, सुभग, आदेय, यशःकीर्ति, तीर्थंकर और उच्चगोत्र इन तेरह प्रकृतियों का क्षय अयोग केवली गुणस्थान के अंतिम समय में होता हैं। इसके बाद जीव अनंत दर्शन, अनंतज्ञान, अनंतसुख, अनंतवीर्य, अव्याबाधत्व, अवगाहनत्व, सूक्ष्मत्व और अगुरुलघुत्व इन अष्टगुणों से युक्त होता हुआ सिद्ध होता है।
गुणस्थानों में सत्त्व, असत्त्व एवं सत्त्व व्युच्छित्तियों का निरूपण–

मिथ्यात्व गुणस्थान में सभी 148 प्रकृतियों का सत्त्व है। इस गुणस्थान में असत्त्व एवं सत्त्व व्युच्छित्ति का अभाव है।

सासादन गुणस्थान में आहारकद्विक और तीर्थंकर प्रकृति के बिना 145 प्रकृतियों का सत्त्व है। उक्त आहारक आदि तीन प्रकृतियों का असत्त्व है। सत्त्व व्युच्छित्ति का अभाव है।

मिश्र गुणस्थान में तीर्थंकर प्रकृति के बिना 147 प्रकृतियों का सत्त्व है। एक तीर्थंकर प्रकृति का असत्त्व है तथा सत्त्व व्युच्छित्ति का अभाव है।

असंयत गुणस्थान में सभी 148 प्रकृतियों का सत्त्व है। असत्त्व का अभाव है तथा नरकायु की सत्त्व व्युच्छित्ति होती है।

संयतासंयत गुणस्थान में नरकायु बिना 147 प्रकृतियों का सत्त्व है। एक नरकायु का असत्त्व है तथा एक तिर्यंचायु की व्युच्छित्ति होती है।

प्रमत्तसंयत गुणस्थान में नरकायु एवं तिर्यंचायु के बिना शेष 146 प्रकृतियों का सत्त्व है। नरकायु, तिर्यंचायु इन दो प्रकृतियों का असत्त्व है। सत्त्व व्युच्छित्ति का अभाव है।

अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में नरकायु, तिर्यंचायु के बिना शेष 146 प्रकृतियों का सत्त्व है। इन्हीं दो प्रकृतियों का असत्त्व है। अनंतानुबंधी चतुष्क, देवायु, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यग्प्रकृति इन आठ प्रकृतियों की सत्त्व व्युच्छित्ति होती है।

अपूर्वकरण गुणस्थान में नरकायु, तिर्यंचायु, देवायु, अनंतानुबंधीचतुष्क, दर्शनमोहनीय की तीन इन 10 प्रकृतियों के बिना 138 प्रकृतियों का सत्त्व है। ऊपर कही गईं 10 प्रकृतियों का ही असत्त्व। सत्त्व व्युच्छित्ति का अभाव है।

अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के प्रथमभाग में (क्षपक क्षेणी वाले) के अपूर्वकरण गुणस्थान के समान 138 प्रकृतियों का सत्त्व है। अपूर्वकरण गुणस्थान के समान 10 प्रकृतियों का असत्त्व है। नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, विकलत्रय, स्त्यानगृद्धि, निद्रा–निद्रा, प्रचला–प्रचला, उद्योत, आतप, एकेन्द्रिय, साधारण, सूक्ष्म और स्थावर इन 16 प्रकृतियों की सत्त्व व्युच्छित्ति होती है।

अनिवृत्तिकरण के द्वितीय भाग में प्रथम भाग की 138 प्रकृतियों में से उपर्युक्त 16 प्रकृतियों के बिना 122 प्रकृतियों का सत्त्व पाया जाता है। अनिवृत्तिकरण के प्रथम भाग में असत्त्व योग्य 10 प्रकृतियों में उक्त नरकगति आदि 16 प्रकृतियों के मिलाने पर 26 प्रकृतियों का असत्त्व है। अप्रत्याख्यानचुतष्क एवं प्रत्याख्यानचतुष्क इन 8 प्रकृतियों की सत्त्व व्युच्छित्ति होती है।

अनिवृत्तिकरण के तृतीय भाग में अनंतानुबंधी–अप्रत्याख्यानावरण –प्रत्याख्यानक्रोध–मान–माया–लोभ, दर्शनमोहनीय की तीन, एकेन्द्रियादि चार जातियाँ, नरक–तिर्यंच–देवायु, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंच

गति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, स्त्यानगृद्धि आदि 3 निद्राऐं, उद्योत, आतप, साधारण, सूक्ष्म एवं स्थावर इन 34 प्रकृतियों के बिना शेष 114 प्रकृतियों का सत्त्व है। उपर्युक्त कथित 34 प्रकृतियों का असत्त्व है। नपुंसक वेद की सत्त्व व्युच्छित्ति होती हैं

अनिवृत्तिकरण के चतुर्थभाग में तृतीय भाग की सत्त्व 114 प्रकृतियों में से नपुंसकवेद के बिना 113 प्रकृतियों का सत्त्व है तृतीयभाग की असत्त्व 34 प्रकृतियों में नपुंसकवेद को मिलाने पर 35 प्रकृतियों का असत्त्व है तथा स्त्रीवेद की सत्त्व व्युच्छित्ति होती है।

अनिवृत्तिकरण के पंचमभाग में चतुर्थ भाग की 113 प्रकृतियों में से स्त्रीवेद के बिना 112 प्रकृतियों का सत्त्व है। चतुर्थभाग में असत्त्वयोग्य 35 प्रकृतियों में स्त्रीवेद को मिलाने पर 36 प्रकृतियों का असत्त्व रहता है तथा हास्यादि 6 नोकषाय की सत्त्व व्युच्छित्ति होती है।

अनिवृत्तिकरण के षष्टम भाग में पंचम भाग की 112 प्रकृतियों में से हास्यादि 6 नोकषाय के बिना 106 प्रकृतियों का सत्त्व है। पंचमभाग की असत्त्वयोग्य 36 प्रकृतियों में उपुर्यक्त 6 प्रकृतियां मिलाने पर 42 प्रकृतियों का असत्त्व रहता है तथा पुरुषवेद की सत्त्व व्युच्छित्ति होती है।

अनिवृत्तिकरण के सप्तम भाग में षष्टम भाग की 106 प्रकृतियों में से पुरुषवेद के बिना शेष 105 प्रकृतियों का सत्त्व है। षष्टम भाग की 42 असत्त्व प्रकृतियों में पुंवेद मिलाने पर 43 प्रकृतियों का असत्त्व हैं। संज्वलन क्रोध की सत्त्व व्युच्छित्ति होती है।

अनिवृत्तिकरण के अष्टमभाग में सप्तम भाग की 105 प्रकृतियों में से संज्वलन क्रोध को कम करने पर 104 प्रकृतियों का सत्त्व रहता है। सप्तम भाग की असत्त्व 43 प्रकृतियों में संज्वलन क्रोध को मिलाने पर 44 प्रकृतियों का असत्त्व होता है तथा संज्वलन मान की

सत्त्व व्युच्छित्ति होती है।

अनिवृत्तिकरण के नवम भाग में अष्टम भाग की 104 प्रकृतियों में से संज्वलन मान के बिना शेष 103 प्रकृतियों का सत्त्व है। अष्टम भाग की असत्त्व 44 प्रकृतियों में संज्वलन मान मिलाने पर 45 प्रकृतियों का असत्त्व पाया जाता है तथा संज्वलन माया की सत्त्व व्युच्छित्ति होती है।

सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के नवम भाग की 103 प्रकृतियों में से संज्वलन माया के बिना 102 प्रकृतियों का सत्त्व पाया जाता है। नवम भाग की असत्त्व 45 प्रकृतियों में संज्वलन माया मिलाने पर 46 प्रकृतियों का असत्त्व रहता है तथा संज्लवन लोभ की सत्त्व व्युच्छित्ति होती है।

क्षीण मोह गुणस्थान में सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान की सत्त्व 102 प्रकृतियों में से संज्वलन लोभ के बिना शेष 101 प्रकृतियों का सत्त्व होता है। सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान में असत्त्व योग्य 46 प्रकृतियों में संज्वलन लोभ मिलाने पर 47 प्रकृतियों का असत्त्व रहता है। ज्ञानावरण 5, दर्शनावरण 4, निद्रा, प्रचला और अंतराय 5 इन 16 प्रकृतियों की सत्त्व व्युच्छित्ति होती है।

सयोग केवली गुणस्थान में वेदनीय दो, मनुष्यायु, मनुष्यगति, देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, 5 शरीर, 5 बंधन, 5 संघात, 6 संस्थान, 6 संहनन, 3 आंगोपांग, 8 स्पर्श, 5 रस, 2 गंध, 5 वर्ण, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त–अप्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुस्वर, आदेय, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण, तीर्थंकर, नीचगोत्र एवं उच्चगोत्र इन 85 प्रकृतियों का सत्त्व रहता है। 5 ज्ञानावरण, 9 दर्शनावरण, 28 मोहनीय नरकायु, देवायु, तिर्यंचायु, नरकगति, नरक गत्यानुपूर्वी,

तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रियादि चार जाति, आतप, उद्योत, सूक्ष्म, साधारण, स्थावर और 5 अंतराय इन 63 प्रकृतियों का असत्त्व रहता है। यहां सत्त्व व्युच्छित्ति का अभाव है।

अयोगकेवली गुणस्थान के द्विचरम समय में सयोग केवली गुणस्थान के समान 85 प्रकृतियों का सत्त्व है। सयोग केवली गुणस्थान के ही समान 63 प्रकृतियों का असत्त्व है। 5 शरीर, 5 बंधन, 5 संघात, 6 संस्थान, 6 संहनन, 3 आंगोपांग, 8 स्पर्श, 5 रस, 2 गंध, 5 वर्ण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुस्वर, दुस्वर, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त–अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, निर्माण, अयशःकीर्ति, अनादेय, प्रत्येक, अपर्याप्त, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आसातावेदनीय और नीचगोत्र इन 72 प्रकृतियों की सत्त्व व्युच्छित्ति होती है।

अयोग केवली के अंतिम समय में सातावेदनीय, मनुष्यायु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, पंचेन्द्रियजाति, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, यशःकीर्ति, तीर्थंकर और उच्चगोत्र इन 13 प्रकृतियों का सत्त्व रहता है। 148 प्रकृतियों में से इन 13 प्रकृतियों के बिना शेष 135 प्रकृतियों का असत्त्व जानना चाहिए तथा उक्त 13 प्रकृतियों की सत्त्व व्युच्छित्ति होती है।

गुणस्थानों में सत्त्व संबंधी नियम– मिथ्यात्व गुणस्थान में जिसके तीर्थंकर प्रकृति का सत्त्व है उसके आहारकद्विक का सत्त्व नहीं होता तथा जिसके आहारक द्विक का सत्त्व होता है उसके तीर्थंकर प्रकृति का सत्त्व नहीं होता है। जिसके आहारकद्विक और तीर्थंकर प्रकृति का युगपत् सत्त्व पाया जाता है उसके मिथ्यात्व गुणस्थान नहीं होता अतः मिथ्यात्व गुणस्थान में एक जीव की अपेक्षा आहारक द्विक और तीर्थंकर प्रकृति का युगपत सत्त्व न होकर एक का ही सत्त्व रहता है तथा नाना जीवों की अपेक्षा दोनों का सत्त्व पाया जाता है। इस

प्रकार मिथ्यात्व गुणस्थान में 148 प्रकृतियों का सत्त्व नानाजीवों की अपेक्षा होता है। सासादन गुणस्थान में एक जीव अथवा नाना जीवों की अपेक्षा क्रम से या युगपत् तीर्थंकर और आहारक द्विक का सत्त्व नहीं होने से 145 प्रकृतियाँ सत्त्व योग्य हैं। मिश्र गुणस्थान में एक तीर्थंकर प्रकृति का सत्त्व न होने से 147 प्रकृतियों का सत्त्व है, क्योंकि इन प्रकृतियों का जिनके सत्त्व पाया जाता है उनके वह गुणस्थान नहीं होता।

चारों ही गतियों में से किसी भी आयु का बन्ध होने पर सम्यक्त्व होता है, किन्तु देवायु के बिना अन्य तीन आयु का बंध करने वाला अणुव्रत–महाव्रत धारण नहीं कर सकता।

नरक, तिर्यंच तथा देवायु का सत्त्व होने पर क्रम से देशव्रत, महाव्रत और क्षपक श्रेणी नहीं होती है।

गुणस्थानों में सत्त्व, असत्त्व एवं सत्त्वव्युच्छित्ति की संदृष्टि

गुणस्थान	सत्त्व	असत्त्व	सत्त्वव्युच्छित्ति
मिथ्यात्व	148	0	0
सासादन	145	3	0
मिश्र	147	1	0
असंयत	148	0	1 (नरकायु)
देशसंयत	147	1	1 (तिर्यंचायु)
प्रमत्त संयत	146	2	0
अप्रमत्त संयत	146	2	8 (अनन्तानुबंधी 4, देवायु, दर्शन मोहनीय की 3)
अपूर्वकरण	138	10	0
अनिवृत्तिकरण क्षपक प्रथम भाग	138	10	16 (नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, विकलत्रय 3, स्त्यानगृद्धि आदि 3 निद्रा, उद्योत, आतप, एकेन्द्रिय, साधारण, सूक्ष्म, स्थावर)

द्वितीय भाग	122	26	8 (अप्रत्याख्यान 4 और प्रत्याख्यान 4)
तृतीय भाग	114	34	1 (नपुंसकवेद)
चतुर्थभाग	113	35	1 (स्त्रीवेद)
पंचमभाग	112	36	6 (हास्यादि नोकषाय)
षष्टम भाग	106	42	1 (पुरुषवेद)
सप्तमभाग	105	43	1 (संज्वलन क्रोध)
अष्टमभाग	104	44	1 (संज्वलन मान)
नवमभाग	103	45	1 (संज्वलन माया)
सूक्ष्मसाम्प–राय क्षपक	102	46	1 (संज्वलन लोभ)
क्षीणमोह	101	47	16 (5 ज्ञानावरण, 4 दर्शनावरण, 5 अंतराय, निद्रा, प्रचला)
सयोग केवली	85	63	0
अयोगकेवली के द्विचरम समय में	85	63	72 (5 शरीर, 5 बंधन, 5 संघात, 6 संहनन, 3 आंगोपांग, 6 संस्थान, 5 वर्ण, 2 गंध, 5 रस, 8 स्पर्श, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुस्वर, दुःस्वर, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त–अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, निर्माण, अयशःकीर्ति, अनादेय, प्रत्येक, अपर्याप्त, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, असाता वेदनीय, नीचगोत्र)
अयोगकेवली के चरम समय में	13	135	13 (सातावेदनीय, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, यशःकीर्ति, तीर्थंकर, मनुष्यायु, उच्चगोत्र, मनुष्यगत्यानुपूर्वी)

पठतीमं हि यो ग्रंथं कर्मस्वभावसूचकं।
कर्मारीन् सः परिज्ञाय, हत्वा यातिः शिवं सुधीः।।
अखिलविधिविमुक्तान्, विश्वलोकाग्रवासान् ।
निरुपमसुखवार्द्धीन् ज्ञानमूर्तीन् विदेहान् ।।
वसुवरगुणविभूषान्, सिद्धनाथाननंतान् ।
सकलपरमकीर्त्या, संस्तुवे तद्गुणाप्त्यैः।।
इत्याचार्यश्रीसकलकीर्तिदेवविरचितं कर्मविपाकग्रंथः समाप्तः।

जो कर्मों के स्वभाव का निरूपण करने वाले इस ग्रन्थ को पढ़ता है, वह बुद्धिमान कर्मरूपी शत्रुओं को जानकर तथा उन्हें नष्ट करके मोक्षपद को प्राप्त करता है।

सम्पूर्ण कर्मों से रहित, लोकाकाश के अग्रभाग में विराजमान, उपमा से रहित सुख को प्राप्त, ज्ञान मूर्ति, देह रहित, आठ उत्कृष्ट गुणों से सुशोभित, सम्पूर्ण उत्कृष्ट गुणों से प्रसिद्ध ऐसे अनंत सिद्ध परमेष्ठी की उनके सदृश गुणों की प्राप्ति के लिए मैं (सकलकीर्ति आचार्य) स्तुति करता हूँ।

इस प्रकार आचार्य श्री सकलकीर्ति देव रचित कर्मविपाक ग्रन्थ समाप्त हुआ।

ब्र. विनोद जैन एवं ब्र.अनिल जैन द्वारा अनुवादित/सम्पादित कृतियाँ

1.	सिद्धांत सार	-	आचार्य जिनचन्द्र	-	प्रकाशित
2.	प्रकृति परिचय	-	संकलन	-	प्रकाशित
3.	ध्यानोपदेश कोष	-	आचार्य गुरुदास	-	प्रकाशित
4.	भाव त्रिभंगी	-	आचार्य श्रुतमुनि	-	प्रकाशित
5.	परमागम सार	-	आचार्य श्रुतमुनि	-	प्रकाशित
6.	लघु नयचक्र	-	आचार्य देवसेन	-	प्रकाशित
7.	ध्यानसार	-	श्री यशः कीर्ति	-	प्रकाशित
8.	श्रुत स्कंध	-	ब्रह्म हेमचन्द्र	-	प्रकाशित
9.	आस्रव त्रिभंगी	-	आचार्य श्रुतमुनि	-	प्रकाशित
10.	सच्चे सुख का मार्ग	-	संपादन	-	प्रकाशित
11.	वर्णी दैनंदिनी	-	संपादन	-	प्रकाशित
12.	ज्ञानलोचन एवं बाहुबली स्तोत्रम्	-	श्री वादिराज कवि एवं अज्ञात कर्त्तृक	-	प्रकाशित
13.	अर्हत् प्रवचनम्	-	श्री प्रभाचन्द्र	-	प्रकाशित
14.	कर्म विपाक	-	आचार्य सकल कीर्ति	-	प्रकाशित
15.	वर्णी विचार (1938)	-	श्री गणेश प्रसाद वर्णी	-	प्रकाशित
16.	धवला पारिभाषिक कोश	-	संकलन	-	अप्रकाशित
17.	जीवकाण्ड (प्रश्नोत्तरी)	-		-	अप्रकाशित
18.	चरणानुयोग प्रवेशिका	-		-	अप्रकाशित
19.	जैनेन्द्र लघु प्रक्रिया	-	आचार्य पूज्यपाद	-	अप्रकाशित
20.	पंच संग्रह	-	अज्ञात कर्त्तृक	-	अप्रकाशित
21.	सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शन.....	-	संकलन	-	अप्रकाशित
22.	पुरुषार्थसिद्धुपाय (टीका)	-	अज्ञात कर्त्तृक	-	अप्रकाशित
23.	तत्व विचार	-	आचार्य वसुनंदी	-	अप्रकाशित
24.	द्रव्य संग्रह (प्रश्नोत्तरी)	-		-	अप्रकाशित
25.	तत्वार्थसार दीपक	-	आचार्य सकलकीर्ति	-	अप्रकाशित

मुद्रकः चन्द्रा कॉपी हाउस, हॉस्पीटल रोड, आगरा-3 फोन: 2360195